संवेदन

अंक 16 कविता केंद्रित लघुपत्रिका जनवरी 2016

जसिन्ता केरकेट्टा, मणिमोहन मेहता
राजीव कुमार 'त्रिगर्ती' की कविताएं

जसिन्ता केरकेट्टा

द्वारा पीटर बरवा, शांतिनगर, गढ़ा टोली-2 हिन्दुस्तान पत्र के पीछे, पुराना एचबी रोड

कोकर, रांची-834001

jcntkerktta7@gmail.com

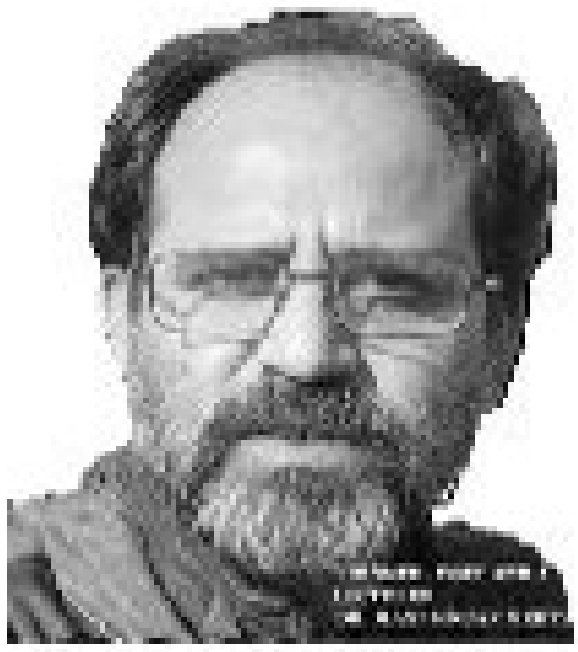

मणि मोहन मेहता

विजयनगर , सेक्टर बी गंज बासौदा (विदिषा) म.प्र 464221

मो. 09425150346 08458884711

profmanimohanmehta@gmail.com

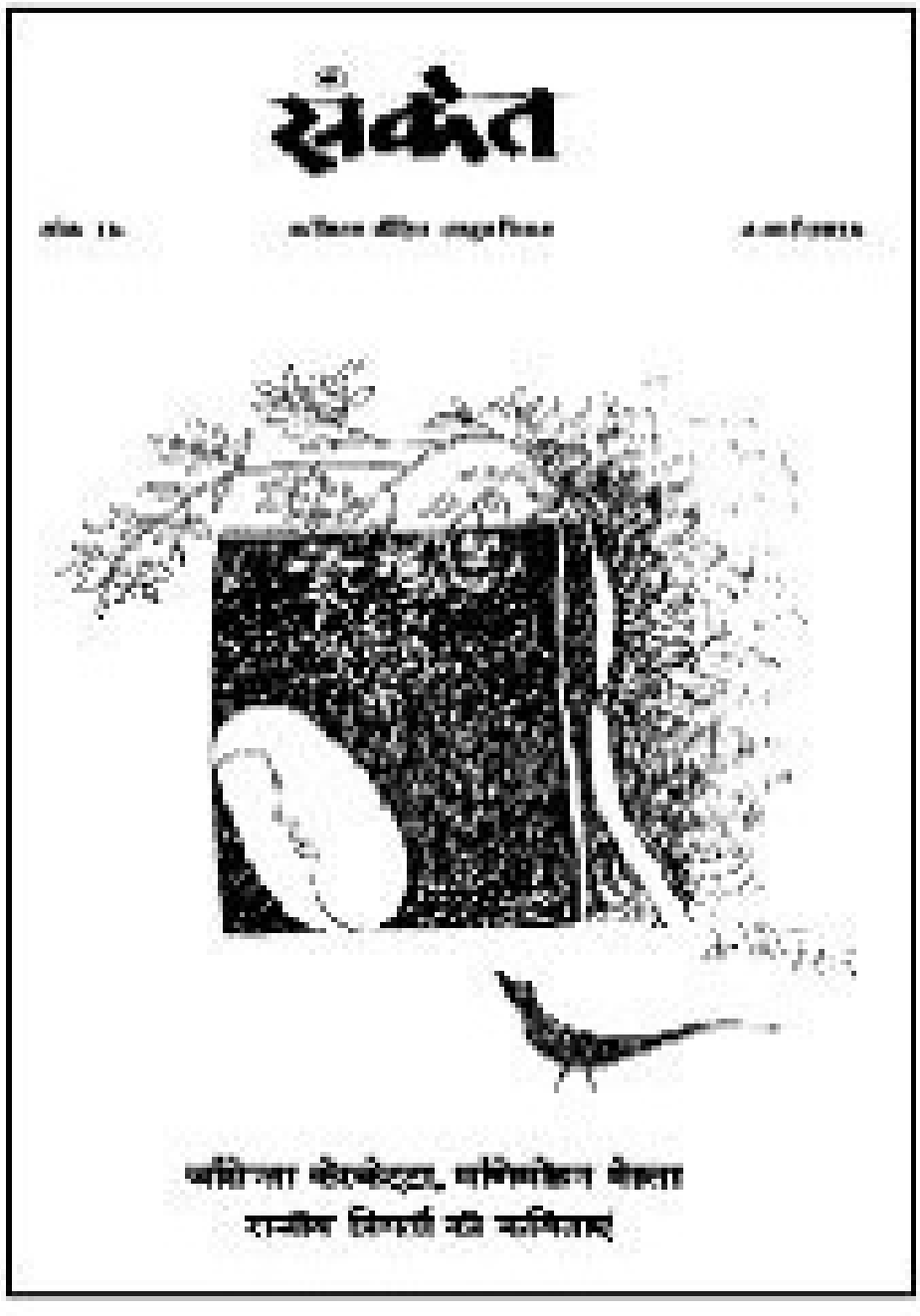

जसिन्ता केरकेट्टा, मणिमोहन मेहता
राजीव त्रिगर्ती की कविताएं

राजीव कुमार 'त्रिगर्ती'

गॉव:लंघु, डाकघर: गांधीग्राम तह. बैजनाथ जिला कॉगड़ा हि.प्र. 176125 09418193024

अपनी बात

लगता है कि इस अंक के बाद संकेत निकल पाएगी भी या नहीं, लेकिन फिर मित्रों का उत्साह और आकांक्षा एक और अंक तैयार करने में मददगार साबित होती है।

इस अंक में झारखण्ड परिवेश से जसिन्ता केरकेट्टा, मालवा से मणि मोहन मेहता और हिमाचल प्रदेश से राजीव कुमार त्रिगर्ती की कविताएं आपके समक्ष हैं। इन कविताओं में नाम उतने प्रमुख न हों लेकिन कविता की एक नई भावभूमि पर आप विचरण करेंगे और देखेंगे कि समय-सापेक्ष कविताओं में कैसे इन कवियों का परिवेश बोलता है। आज का कवि सिर्फ कलावादी कलाबाजियां दिखलाकर पाठकों को आश्चर्य-चकित करने का उपक्रम नहीं करता बल्कि अपनी लोकधर्मिता और सामाजिक सरोकार के लिए एक खामोश लड़ाई लड़ता है। इस लड़ाई में वह राजनीतिक चेतना सम्पन्न भी है और बहुत सरल-सहज तरीके से अपनी बात रखता है। इन कवियों में किसी भी तरह से क्लिष्ट होने का मोह नहीं है, लेकिन इसका मतलब ये नहीं कि वह सपाटबयानी करना चाहता है। एक अंतर्निहीत लयकारी कविता को पाठकों से अनायास कनेक्ट करती है। कविता की भाषा इस तरह मुखर होती है जैसे पाठकों से सम्वाद कर रही हो। यही आज की कविता की पहचान है और उसकी ताकत भी है।

कवियों का परिवेश और उनका समाज, विसंगतियां, युग की विद्रूपताएं, माटी की खुशबू और आशा की अबोध किरणें इन कविताओं की विशिष्टता है। संकेत का अभियान भी यही है कि ऐसी कविताएं पाठकों के सम्मुख लाई जाएं जो सिर्फ लिखने के लिए लिखी न गई हों, किसी आलोचक या समीक्षक को प्रभावित करने के लिए न लिखी गई हों। लोकतांत्रिक चेतना सम्पन्न कविताएं जिनमें हर तरह के फासीवाद और सामाजिक अन्याय के विरुद्ध एक पुरज़ोर आवाज़ हो। ऐसी कविताएं इंसानी समाज और रिश्तों को बनाने के लिए एक मुकम्मल लड़ाई लड़ती सी प्रतीत होती हैं। संकेत के कवि सोशल-साइट्स पर भी अपनी कविताओं और विचारों के ज़रिए फासीवादी ताकतों के खिलाफ़ शंखनाद करते रहते हैं। ये किसी गुरू-चेला परम्परा के कवि नहीं हैं और न ही किसी राजनीतिक दल के भोंपू। ये कवि अपने समय में अपनी उपस्थिति का मतलब बखूबी जानते हैं और ये भी जानते हैं कि कवि और कविता की ज़िम्मेदारी बहुत बड़ी होती है। उसे हर हालत में सच का साथ देना है और लोक-धर्मिता की मशाल को बुझने नहीं देना है।

श्री प्रमोद बेरिया और डॉ. मोहन कुमार नागर संकेत के दो आजीवन सदस्य बने हैं, उनका साधुवाद। भाई नित्यानंद गायेन, कुंअर रवीन्द्र सिंह और दलजीत सिंह कालरा का सहयोग संकेत की पूंजी है और उन पाठक मित्रों को भी नमन जो संकेत पढ़कर अपनी राय से अवगत कराते हैं।

जसिन्ता करकट्टा की कविताएं

जन्मदिन पर मां को याद करते जसिन्ता

हर साल अपने जन्मदिन पर खिड़की से आकाश ताकते हुए सोचती हूं जन्मदिन क्या है अगर मां को न याद करूं? पहली बार बचपन में जब गांव गई थी तो मां ने एक गौशाला दिखाते हुए दिखाते हुए कहा था-'तुम यहीं जन्मी थी।' मैंने कहा था - 'मां ! मुझे जन्म देने के लिए क्या गौशाला ही मिला था?' तब मां बताती है कि अचानक दर्द उठा जब वो गौशाला में काम कर रही थी और वहीं गिर जाने के बाद फिर उठकर कहीं जाने की हिम्मत न हुई। आनन-फानन में गांव की अन्य महिलाएं आई और इस बीच मां ने मुझे वहीं जन्म दिया।

बचपन से अपना नाम भी अजीब लगता था। मां से कहती थी कि कोई और नाम नहीं मिला जो यह रख दिया जिसका अर्थ किसी को समझ में नहीं आता। तब मां ने कहा कि उन दिनों इलाके में कुछ विदेशी सामाजिक कार्यों में लगे थे। उन्होंने ही तुम्हारा नाम रखा था। एक बार मैक्सिकन पत्रकार व कवि लूईस गोम्स मिले तो उन्होंने एक फूल और मेरे नाम पर ग्रीक यौद्धा की कहानी भेजी और तब मैंने पहली बार जाना यह कोई छोटा फूल है -'ग्रीक योद्धा के रक्त पर उगा एक फूल।'

सोचती हूं प्रकृति का हर चीज किसी न किसी मतलब से जन्मती है (पनपता या उगता भी है) अपनी भूमिका अदा करता है और चला जाता है। शायद जन्मदिन बार-बार यह याद दिलाता है कि हम किस मकसद से आए हैं और हमारी भूमिका यहां क्या है और हम क्या कर रहे हैं।

मेरे जन्मदिन पर आप सबकी ओर से मिली ढेरों शुभकामनाओं से अभिभूत हूं।

3-8-2015

जसिन्ता केरकेट्टा

जसिन्ता केरकेट्टा

भूख का आग बनना

भूख जब आग बन रही हो
तब डिग्रियां चुपचाप उठकर
उस आग की ओर चल देती हैं,
और कागज पर उतरने से पहले
स्याही की देह, घुलने लगती है
किसी गहरी चिंता में।
तब, रात भर खटिया की रस्सी
लगती है थोड़ी और खुरदुरी
जैसे उसी खुरदुरेपन पर
जिंदगी, बार-बार उठकर
फिर चलने की कोशिश कर रही हो।
तब, मुर्गे के बांगने से पहले ही
हो जाती है एक सुबह
और धूप निकलने तक
आंगन में उंघती रहती है रात ।
तब एक दिन
उठती है कहीं
कुरथी की दाल से
भाप की लहक,
पत्ते पर लिपटी
रोटी से राख की महक
और बदल जाती है कविता में।
कविता,भूख की आग पर
पकती हुई गुनगुनाती है,
और उठने लगती है एक साथ
कई घरों की आग
भूख के सारे कारणों के खिलाफ ।।

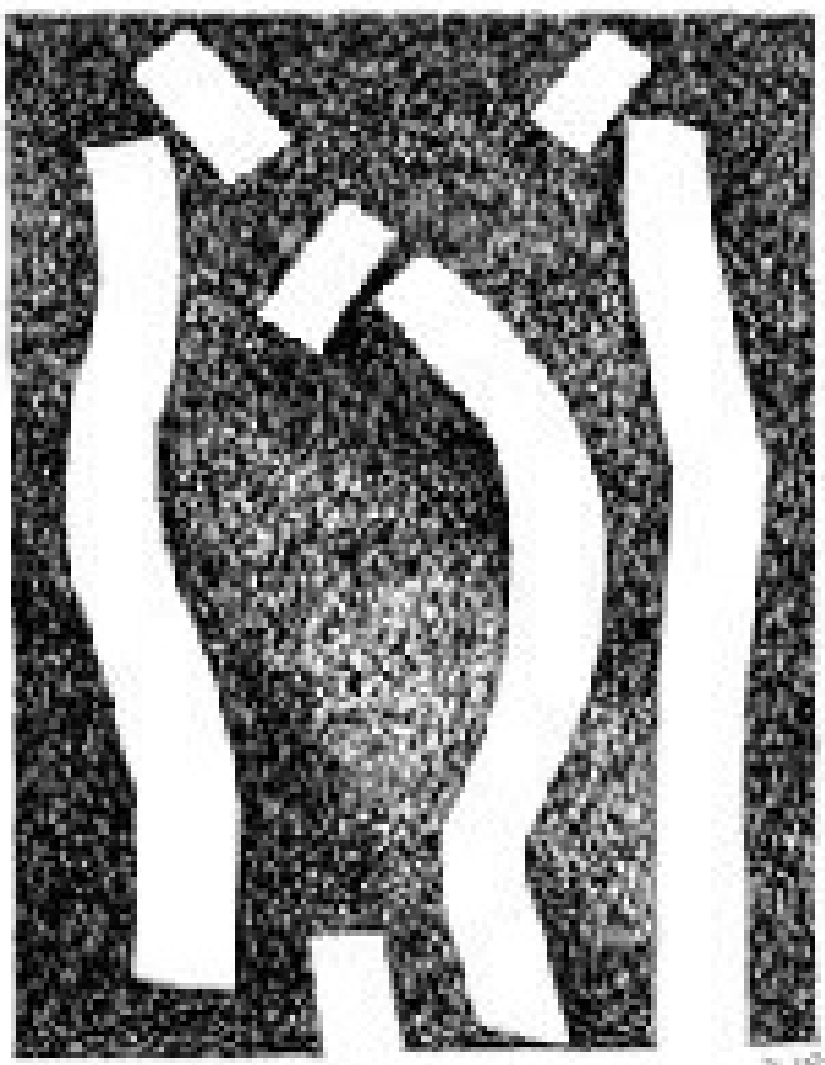

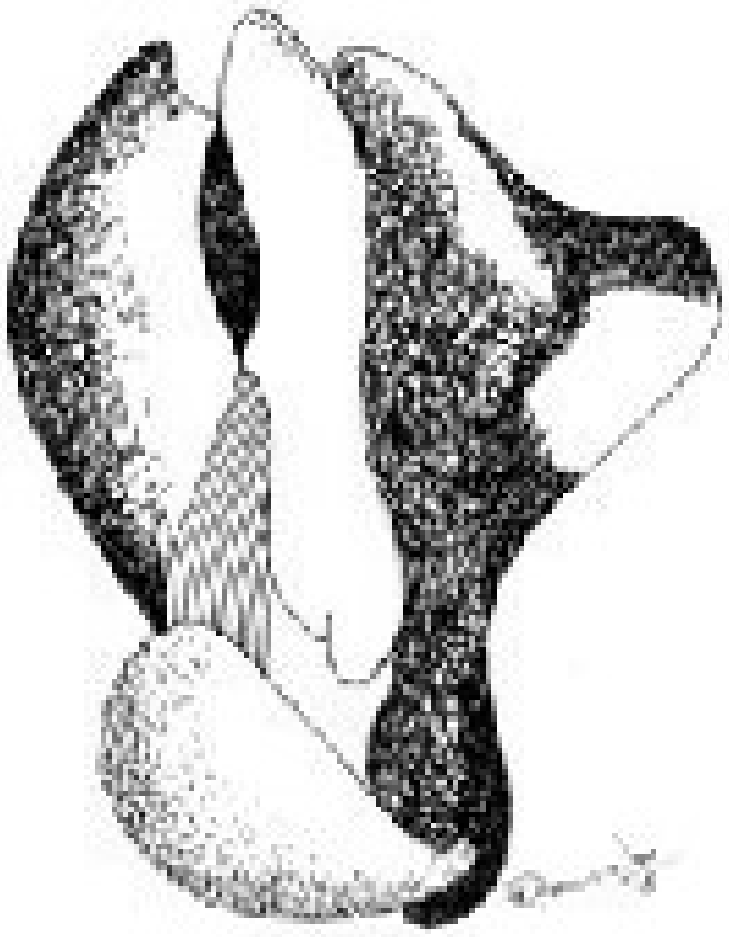

जसिन्ता केरकेट्टा

शब्द बनता महुआ का फूल

कई रंगों की चादर लपेटे
एक साथ सारे रंगीन शब्द
बढ़ रहे थे गांव की ओर
तोड़ते सनई के फूलों को
नोंचते कोईनार के पत्तों को,
तभी मिट्टी के घर से अकेली
मुस्कुराती हुई संस्कृति निकली
हाथ में लेकर कांसे की थाली
थोड़ा सरसों का तेल, थोड़ा पानी
और झुक गया अपनेपन से गांव
रंगीन शब्दों के धोने को पांव
अचानक शब्दों के रंग उड़ने लगे
पहली बार धरती से जैसे जुड़ने लगे
कहते रहे क्या-क्या गए हैं हम भूल
तभी गिरा वहां एक महुआ का फूल
छूकर उसे रह गए सब स्तब्ध
वो बन रहा था धीरे-धीरे
पूरी पृथ्वी पर, एक अर्थपूर्ण शब्द...

जसिंता केरकेट्टा

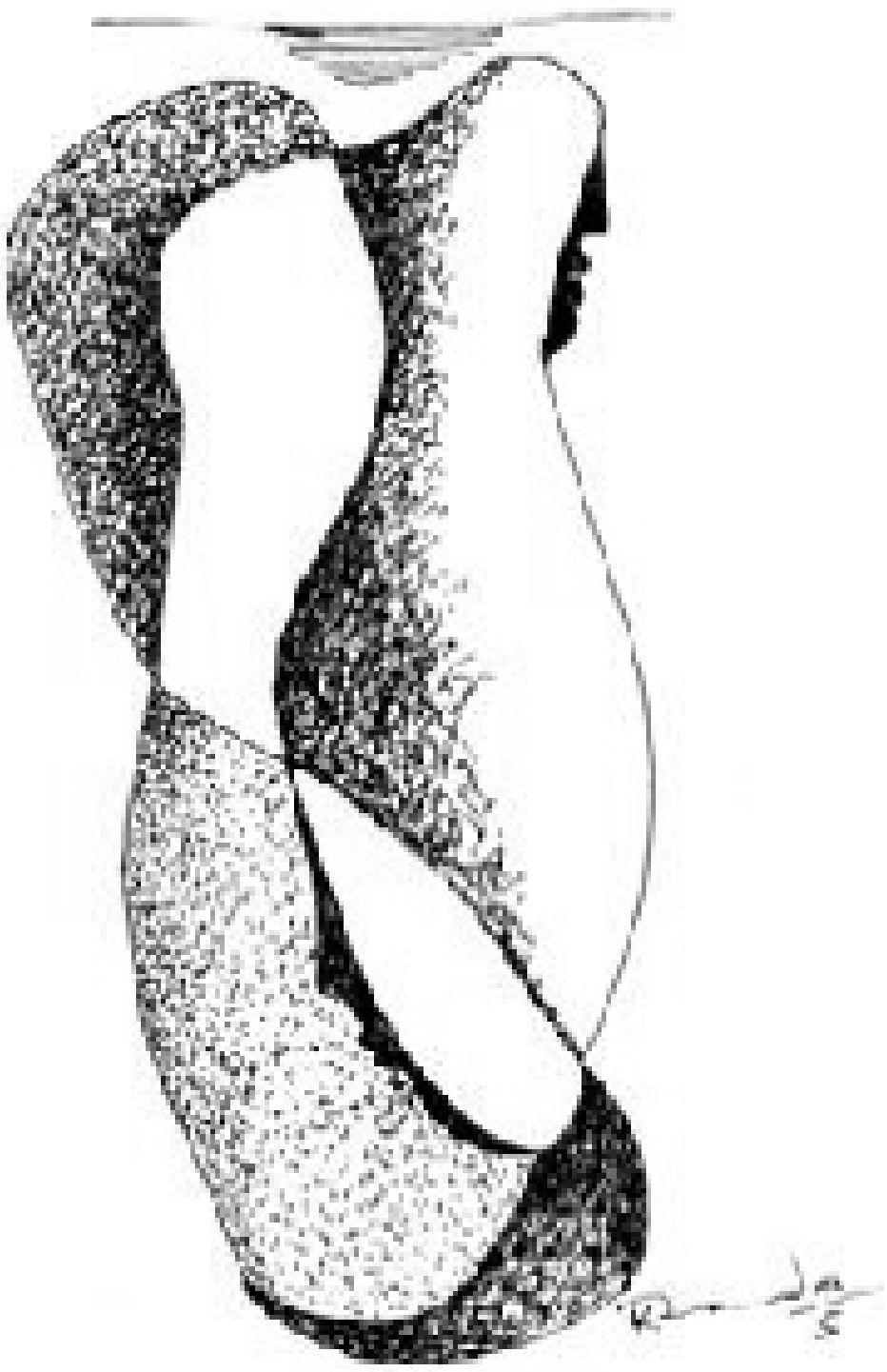

मां बनने की उम्र

सड़क पार करते समय
उस लड़की ने अपनी अंगुलियों पर
किसी ठंडे स्पर्श को आकर ठहरते देखा
रूई के फाहों सा पहन नरम दस्ताना
लड़खड़ाती हुई, कांपती हुई
एहसास की एक बूढ़ी हथेली को
अपनी अंगुली कसकर पकड़ते देखा,
गाड़ियों की शोर से हड़बड़ाकर
सड़क पार करते उसके बूढ़े बाबा ने
पकड़ लिया था सहसा हाथ उसका
और लड़की ने महसूस किया वह स्पर्श

किसी पिता के हाथों का नहीं था
मासूम बच्चे सा वह स्पर्श
बूढ़ी नजरों से उसे ताकता रहा
और पीछे-पीछे हाथ थामे चलता रहा,
सड़क के इस पार से उस पार तक
गुजरने से पहले अनायास एक बेटी
बन जाती है एक मां भी
और अचानक एक बेटी ने जाना
मां बनने की कोई उम्र नहीं होती
जैसे पूरी धरती और पूरी प्रकृति से
क्या कोई पूछ सकता है ?
क्या है उसके मां बनने की उम्र?

जसिंता केरकेट्टा

आदमी और शब्द

गांव में, पुआल की छत पर
रखे सूप में रातभर
भींगते हैं शीत से
पूर्वजों की खेतों से उपजे शब्द,
भोर को धीरे से मां
शब्दों से भरा सूप उतारती है
छिलके निकाल, आंच पर चढ़ाती है
शब्दों को सिझाती है
और सरई के पत्तों में लपेट
बच्चों को थमाती है
जंगल में साखू की तरह
वही शब्द पीढ़ियों की नसों में
खून बन सनसनाते हैं,
कंक्रीट के जंगलों में भी उगते हैं शब्द
रंग-बिरंगें, चमकीले, घूसर और गाढ़े
दिखने में भरे, अंदर से डरे
खूबसूरत कोंपले मगर खोखले,
यहां आदमी और संवेदना के बीच
जैसे बन गई दूरी मीलो-मील है
गुम हो गई हैं भावनाएं कहीं,
रह गए सिर्फ शब्द संवेदनशील हैं!

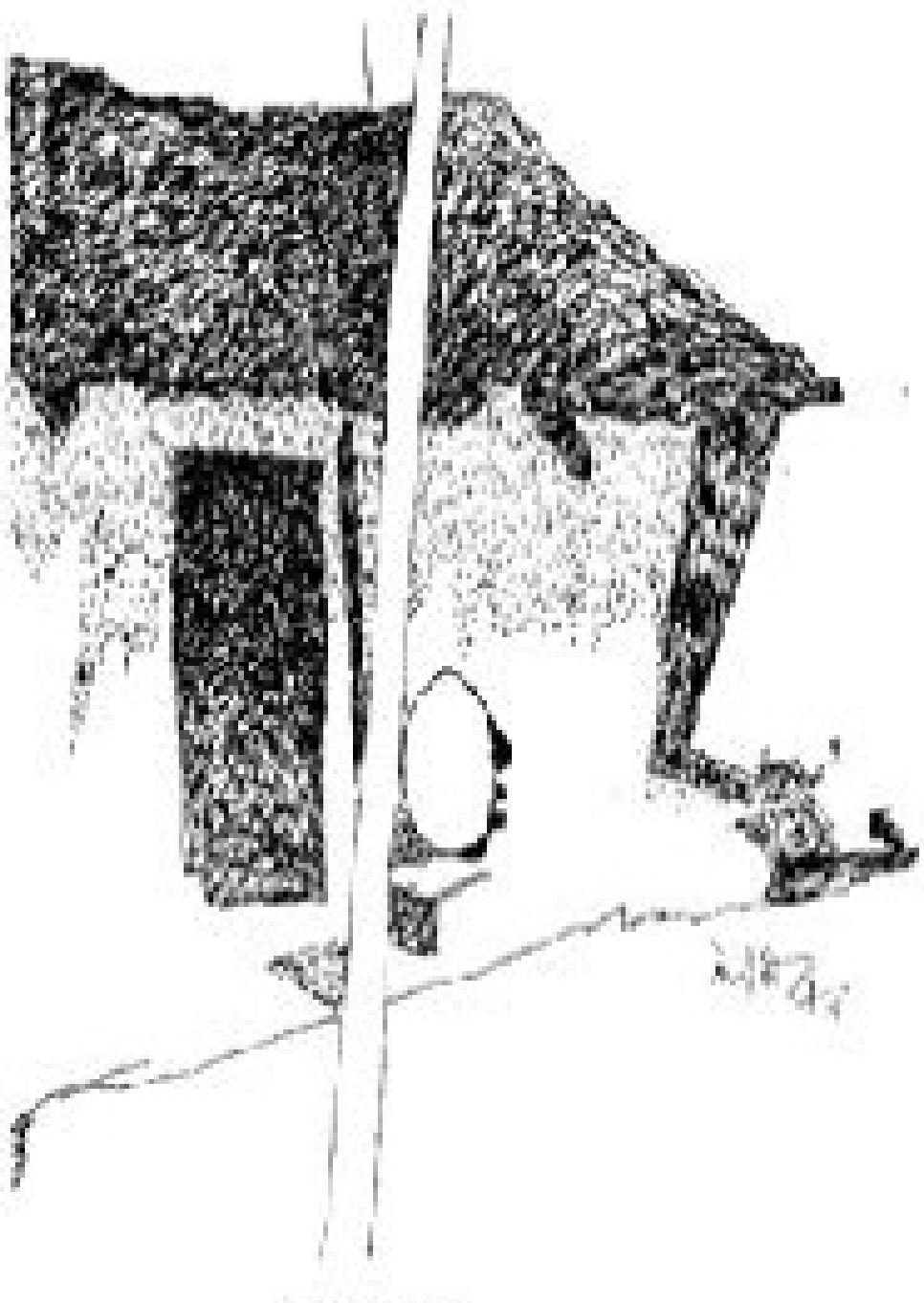

जसिंता केरकेट्टा

धरती क्यों जल रही है

गांव के सीमाने पर
लाठी टेक खड़ा था
वह धरती पुत्र,
अपनी ओर आते देख
विकास -बवंडर को
रख दी उसने एक शर्त
कहा - मैं खींच देता हूं
पृथ्वी पर एक लकीर
एक हिस्सा तुम्हारा
एक हिस्सा हमारा
देखूंगा मैं दोनो का भविष्य,
पहाड़ी पर चढ़ गया धरती पुत्र
देखता रहा दोनो ओर
और एक दिन उसने देखा
उस पार युद्ध हो रहे थे
विकास के नाम पर
जल रही थी धरती,
और इस पार
खेतों में बीज विकसित हो रहे थे
पूरी धरती को पालने के लिए
संभालने के लिए,
इधर धरती पल रही थी
उधर धरती जल रही थी !

जसिंता केरकेट्टा

विकास की धूल

फांकती हुई विकास की धूल
दिन-रात खांसती हैं जिंदगी
हृदय की उम्र सिमट गई है,
आंखें उम्मीदों की
दिन गिन रही अंगूलियों में।

अब नहीं जाते कदम खेतों की ओर
वहां पैरों को लत लग गई है
दौड़ पड़ने को कोयला से लदे
खड़े ट्रकों के पीछे
पैनम* कोयला खदान के रास्ते पर

कुदाल को लंबे अरसे से भूल कर
निकलता अब किसान
घर से चुपचाप किसी चोर की तरह।

और सपने दब जाते हैं रात
अचानक रौंदकर निकल गए
किसी ट्रक के नीचे
तब अपने हिसाब से आकर
जीवन की कीमत तय करती हैं
उंची बोलियां
और रफा-दफा हो जाती हैं
इस झमेले में कई जिंदगियां।

पैनम* झारखण्ड की कोयला खदान

क्या-क्या मिला है मुआवजे में
जब पूछती है सच्चाई किसी से
तब कोने में बैठा बूढ़ा अनुभव
बस इतना ही कह पाता है

फांकती हुई विकास की धूल
दिन-रात खांसती हैं जिंदगी
हृदय की उम्र सिमट गई है,
आंखें उम्मीदों की
दिन गिन रही अंगूलियों में।

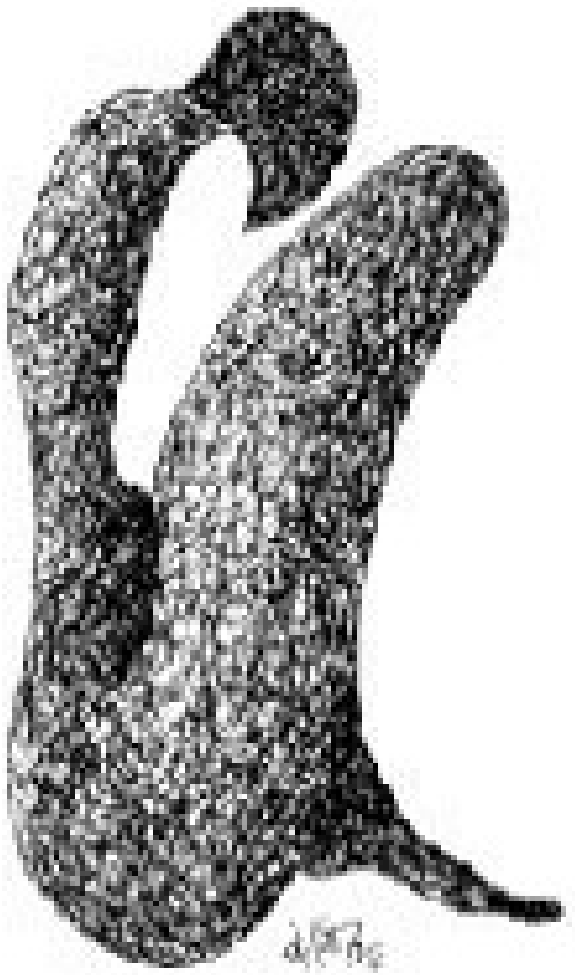

जसिंता केरकेट्टा

जमुनी तुम आखिर हो कौन ?

ओ जमुनी, देखो
तुम्हारे दर्द का हर दिन अब
सज रहा है, खबरों का बाजार
देस से लेकर देशों तक
तुम्हारे दर्द कैसे बिक रहे हैं, देखो
पति से तुम्हारे पिट जाने की
पड़ोसी के तुमसे दुष्कर्म की
प्रेमी से पाया अनचाहा गर्भ मिटाने की
हो जाने वाली तुम्हारी हत्या की
तुम्हारे शोषण और उत्पीड़न की
हर तरह की चटपटी, मसालेदार
तुम्हारे दर्द का हो रहा है व्यापार
तुम रेडियो, टीवी, इंटरनेट पर,
हर दिन की खबरों में
देखती हो, पढ़ती हो, सुनती हो
टकटकी लगाए बैठकर घर पर, मौन
यह सोचते हुए कि इन सबके बीच
कहीं तुम खुद हो गयी गौण
तुम जमीन कुरेदती हुयी सोचती हो
तुम दर्द हो, खबर हो, या हो इंसान
जमुनी तुम आखिर हो कौन ?

यह चित्र : आरती

जसिन्ता केरकेट्टा

नदी का अस्तित्व

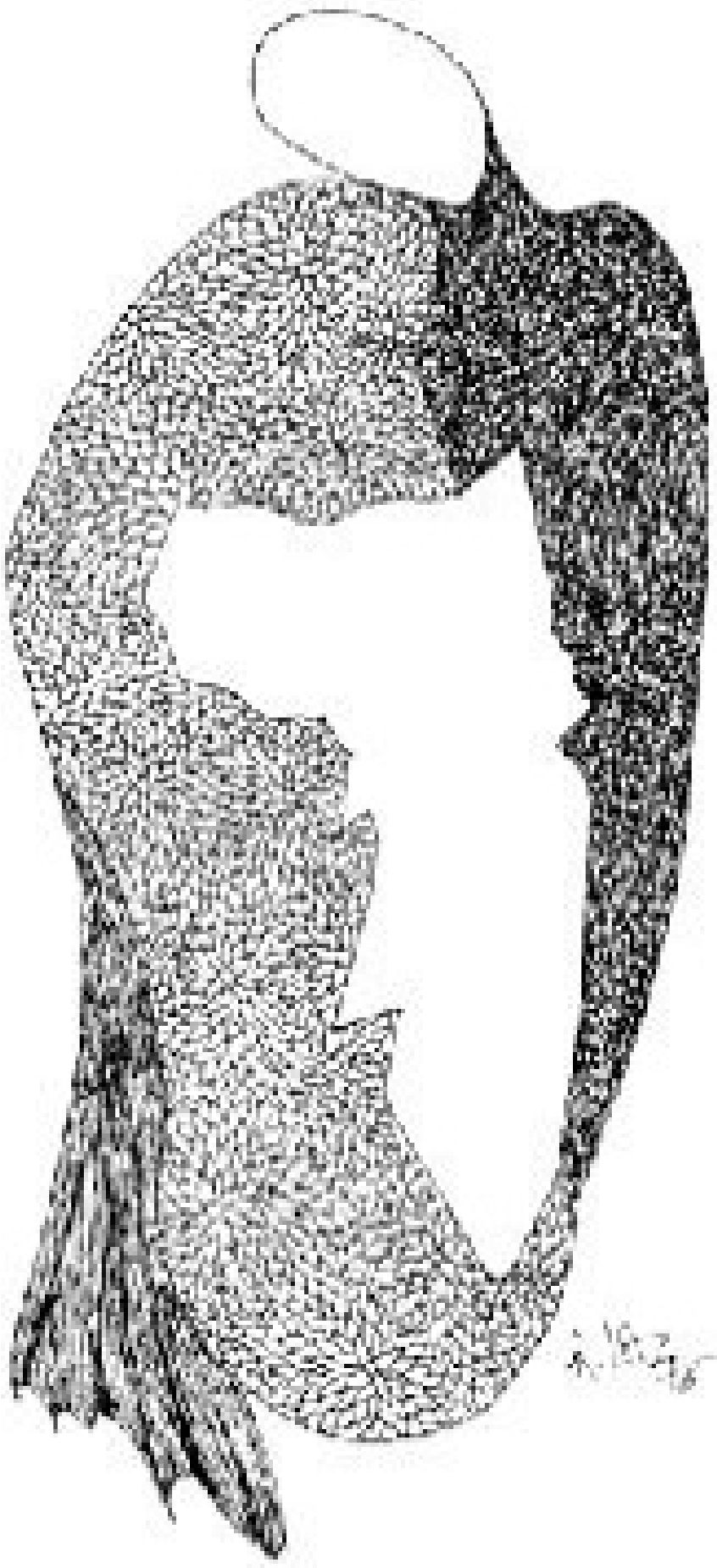

वो कलकल करती पुसारो नदी
जिसकी गोद में
कभी अठखेलियां की थी हमने
देखती हूं अब
बढ़ती आबादी की प्यासी राक्षसी
लपलपाती जीभ ने जैसे
चूस लिया हो सारा पानी,
उसके तन पर लिपटी
दूर तक पसरी
उजली साड़ी रेत की
आहिस्ता-आहिस्ता जैसे
उसकी देह से किसी ने
खींच ली हो बेहयायी से
हो गई है वो बिल्कुल नंगी,
अब भी चैन नहीं लूटने वालों को
उसके सीने पर दिन-दोपहर
चला रहे हैं बेरहमी से फावड़े
उखाड़ लेने को उसकी देह से
लाल मांस सी मिट्टी के लोंथे,
इस निर्दयता के बाद उसकी
सूखी खोखली देह पर
जैसे डाल दिया गया है
कोई चिथड़े का टुकड़ा
एक पुल बनाकर
जो उसके लुटे अस्तित्व पर
हंसता रहता है दिन-रात।।

लाल नदियां

जसिंता केरकेट्टा

हजारों पेड़ों की लाश
गिरा चुकने के बाद
खून से सने हाथ
चुपचाप धुलते हैं
सारंडा की नदियों में,
तब दहाड़ें मारता है पानी
किनारों के कांधे पर सर रख
और पूरा जंगल लाल हो उठता है।
सखुआ की डाली ठोंकती हैं
जीवित स्मृतियों का पर्चा दरख्तों पर,
एक आवाज हहराती है
गवाह बनकर वक्त के कटघरे में
और दम तोड़ते सबूत इंतजार करते हैं
अंतिम सांस तक न्याय की
कदमों की आहट का,
तब भरोसे की आंखें सांझ बन
डूबने लगती है सूरज के साथ

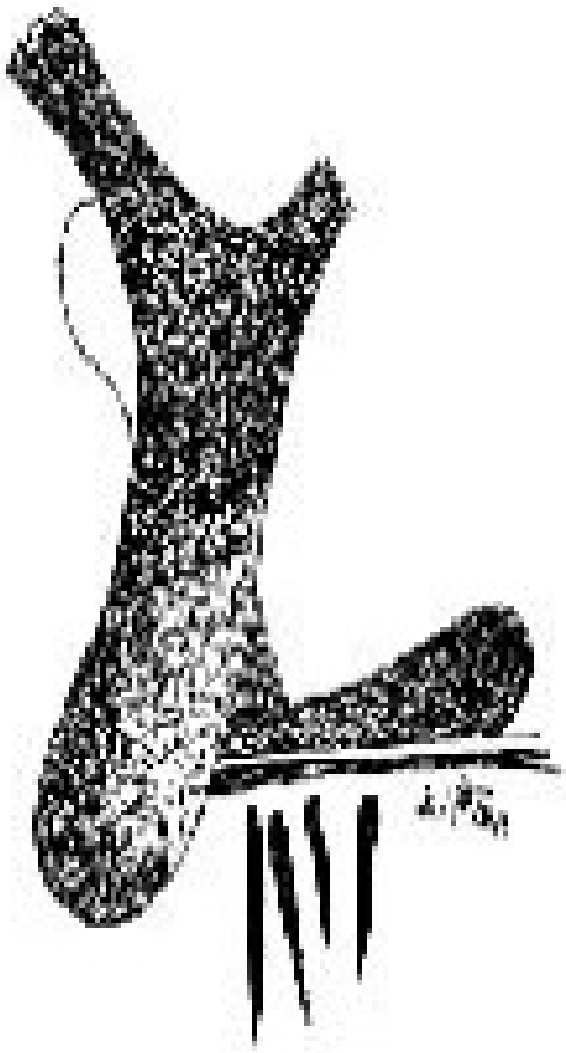

जब कागजों पर समझौतों का ठप्पा
लगाने लगता है कोई खौफनाक ठहाका....
सारी पड़तालें दुबक जाती हैं
और भूखी हड़तालें अंधेरे में
चुपचाप चबाने लगती हैं रोटियां
और खून के आंसू
रोती रह जाती हैं
सारंडा की लाल नदियां।

हूल जोहार

जसिंता केरकेट्टा

आकाश से कोई प्रकाश-पुंज
पहाड़ियों पर आज कौंधा है
देख अपने महुआ के फूलों को
जिन्हें बुलडोजरों ने रौंदा है
देखो, पहाड़ियों पर वह प्रकाश-पुंज
धीरे-धीरे ले रहा है इंसानी आकार
उठ रही है नगाड़ों के बीच आज फिर
जंगलों में हूल - हूल की पुकार
हल्दी चावल नहीं आज
घर-घर साखू के पत्तो में लपेटकर
गुपचुप तीर भेजवाए जाते हैं
गहन निद्रा से जाग उठो, देखो
सिद्धो-कान्हो,चांद-भैरव चले आते हैं
आवाजें तेज होने लगी हैं घर-घर में
पुराने तीरों को धार करने की
कोने-कोने में हो रही तैयारियां
अस्तित्व की लड़ाई आर या पार करने की

देख बिगड़ता जीवन का संतुलन
बुरूबोंगा भी रोते हैं बार-बार
सुनकर उनका रोना गुस्से में
धरती तपकर हो रही अंगार
आकाश भी कर रहा उन अंगारों पर
टूटकर गिरते तारों के तीरों को धार
गुलाम बनाने वाली नरभक्षी ताकतों पर
बरसेंगी अब आसमानी तीरों की बौछार
मत पूछो अब हाल कैसा किसका है?
बस दौड़ पड़ो सुनकर अपनों की चित्कार
नरभक्षी ताकतों के खिलाफ खड़े होने को
कहते चलो हूल जोहार - हूल जोहार...

नई परिभाषा गढ़ता जावा का फूल

जसिंता केरकेट्टा

करम की डालियों के चारों ओर
नाचती हुई
करम की डलिया को
सामने रखकर कुंवारियां
करम राजा से
एक ही साथ मांगती हैं इस दिन
एक अच्छा जीवन साथी और
बच्चे रूपी, घर के दीये की नई बाती,
कुंवारियां रंग देती हैं
करम पर्व के पूर्व
करम डलिया की कोख में पलते
जावा फूलों के सारे भ्रूणों को
सोने की चमक वाले
सुनहरे पीले रंगों में
ताकि करम डलिया रूपी गर्भ में
पल रही कोई कन्या भ्रूण फिर
न बिंध सके सभ्य समाज में
लिंग भेद की तीरों से,
सहेजती हैं कुंवारियां नौ दिनों तक
करम की डलिया को
मानो संभाल रही हों
अपने ही गर्भ में
पलते किसी बच्चे को
करम डलिया के चारों ओर
नौ दिनों तक नाचती गाती हैं
दुनिया की सारी बातें भूल
जो बन जाता है
करम के दिन जावा का फूल,
यह नई सृष्टि अखाड़ा में
मंद-मंद मुस्कुराती है
जिसे हर आदिवासी जन
अपने सिर पर लगता है
और हर आदिवासी बाला
अपने बालों में सजाती हैं,
और करम का यह डलिया
करम का यह जावा का फूल
करम की वो कुंवारियां
बतलाती हैं
नई सृष्टि रूपी शिशुओं को
सड़कों पर लावारिस फेंक आने वाले
तथाकथित सभ्य समाज को कि
नई सृष्टि को जन्म देने
और सहेजने की प्रक्रिया, प्रकृति में
समाज की बनायी परिभाषाओं से परे है।

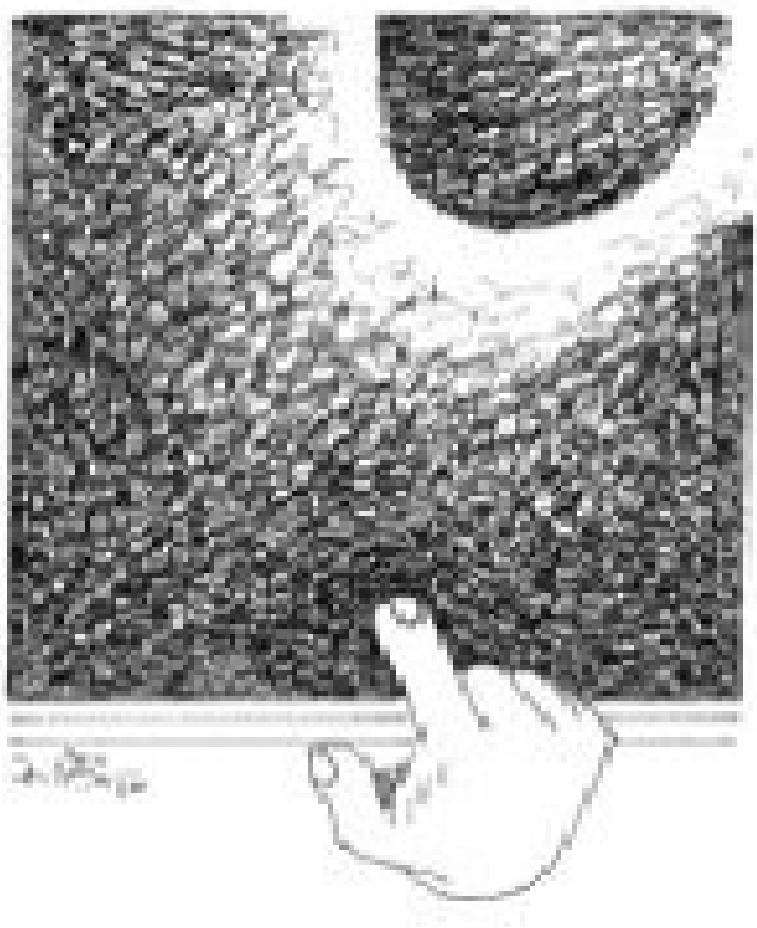

जसिंता केरकेट्टा

आदिवासी गांव

सोचती हूं क्या सोचता होगा
करम का पर्व मनाने शहर से लौटा
करम के गीतों में मदमस्त
पढ़ा-लिखा एक आदिवासी लड़का
जब कोई उससे पूछता है अचानक
पढ़-लिख गए, अब कहां बसोगे?
लौटोगे शहर या फिर लौट आओगे गांव
और वो देखता है
सामने से आती बाढ़
शहरों से गांवों की ओर बढ़ती हुई,
वह बाढ़ शहरों की
जो लील रही है गांवों को
और वो आदिवासी लड़का
गांव के किसी टीले पर बैठा
सोचता है अब वह जाएगा कहां?
कैसे संभलेगा इस बाढ़ में,
उसके पास नहीं है
अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए
बनायी गई, पूर्वजों द्वारा
शास्त्रों की कोई नाव
बाढ़ से बरबाद होती
फसलों को देख
भाग कर बचे गांवों लूटने की प्रवृति
या ऐसे किसी भी कर्म की जब
हिमायती नहीं रही है उसकी संस्कृति
सोचता है
तब कैसे बचेगी उसकी प्रकृति?
फिर, कैसे बचेगा उसका अस्तित्व?

तभी उसे मिल जाता है
बाढ़ में बहकर आती
करम की एक डाली
जिसके सहारे वह पहुंचता है
अपने अस्तित्व के घर तक
जहां नई शुरूआत की प्रेरणा देता है
शीत से भींगा कोई जावा का फूल,
करम डाली से नापता है हर दिन
वह बाढ़ का पानी
और बाढ़ के बीचों-बीच
गाड़ कर करम डाली
फिर बसा लेता है कोई गांव
शहर की बाढ़ पर बसा, जीवित
एक आदिवासी गांव।।

उठो, तुम्हारे सिरहाने है सूरज

जसिंता केरकेट्टा

ओ गांगु पहाड़िया!
तुम सफेद कुर्ता पहन डुलमुल
नशे में घूम रहे हो मंगर बाजार
और वहां उपर पहाड़ पर
तुम्हारी बेटी पड़ी है खाट पर
देकर एक बच्चे को जन्म
अधमरी सी बीमार,
तुम अपनी बेटी के दर्द बेच रहे
बिहान से ही आकर बाजार
सौ, दो सौ, पांच सौ मदद की
लगा रहे परिचितों से गुहार
कुछ पैसे लोगों ने तुम्हें दिए भी
देखकर तुम्हें लाचार
तुम सांझ झौंक आए
सब भट्ठी में
नहीं याद आई बेटी,
तुम्हें एक भी बार...

ओ पहाड़ों के राजा
क्यों नहीं तुम्हें सुनाई पड़ती
अपनी ही लड़कियों की चीत्कार
तुम सोते रहते हो
नशे की नींद में ऊपर
और मेला देखने आई तुम्हारी बेटियों का
शहरी भेड़ियों के हाथों
हो रहा बलात्कार...

ओ मईसा पहाड़िया
तुमने ही उठाया था भार
हर पहाड़िया को
दिलाने 'भोजन का अधिकार'
अनाज बांटने का जिम्मा लेकर
तुम
क्यों पहाड़ से भागकर
नीचे तराई में बस गए
उन्हीं लूटेरों के साथ, सपरिवार
कैसे भेदकर
तुम्हारी आजादी की दीवारें
तुम्हारे पहाड़ों पर
लोग मशीनें चला रहे
अपना पहाड़ बेचकर
कौड़ी के भाव तुम उनके
दरवाजे पर भीख मांग रहे।

उठो, पहाड़ों के राजा बचाने
अपने पहाड़ों को कटने से
अपनी बेटियों को
गैरों के हाथों बिकने से
देखो, इतिहास का पन्ना
फिर से फड़फड़ा रहा
उठो कि तुम्हारे सिरहाने से
सूरज निकल रहा है।

जसिन्ता केरकेट्टा

पहाड़ों पर उगे असंख्य बांसों का रहस्य

मैं कुरूआ में सो रहा था
अचानक जमीन हिलने लगी
देखा जमीन का एक टुकड़ा
जेसीबी मशीन के पंजों पर था
अपनी जमीन के टुकड़े के साथ
मैं भी लटका था मशीन पर
तब महसूस हुआ मुझे
अपनी जमीन सहित उखड़ जाने का दर्द,
मैंने देखा मेरे पूर्वजों की देह
कैसे टुकड़े-टुकड़े में काटी जा रही थी और
उसका हर टुकड़ा करोड़ों में बिक रहा था
खरीदारों की भीड़ नीचे शहर बन गई थी
और लगा जैसे मेरे ही शरीर का
हर हिस्सा कट-कट कर बिक रहा हो
मेरी आंखें, मेरा हृदय और सबकुछ,
मैंने पहाड़ों की चोटी पर से देखा
अपनी पीढ़ियों का भविष्य
बांस बाजार लेकर बेचता भविष्य
और मैंने छुटते ही मशीन के
पंजों से उठा लिया बांस
इस बार ये बांस बाजार नहीं जाएंगे
जंगलों के अंदर अब बांस
बनेंगे हर हाथ का तीर-धनुश
और तब पहली बार समझ में आया
मेरे पूर्वजों के रक्त से सिंचित
पहाड़ों पर उगे
असंख्य बांसों का रहस्य ।।

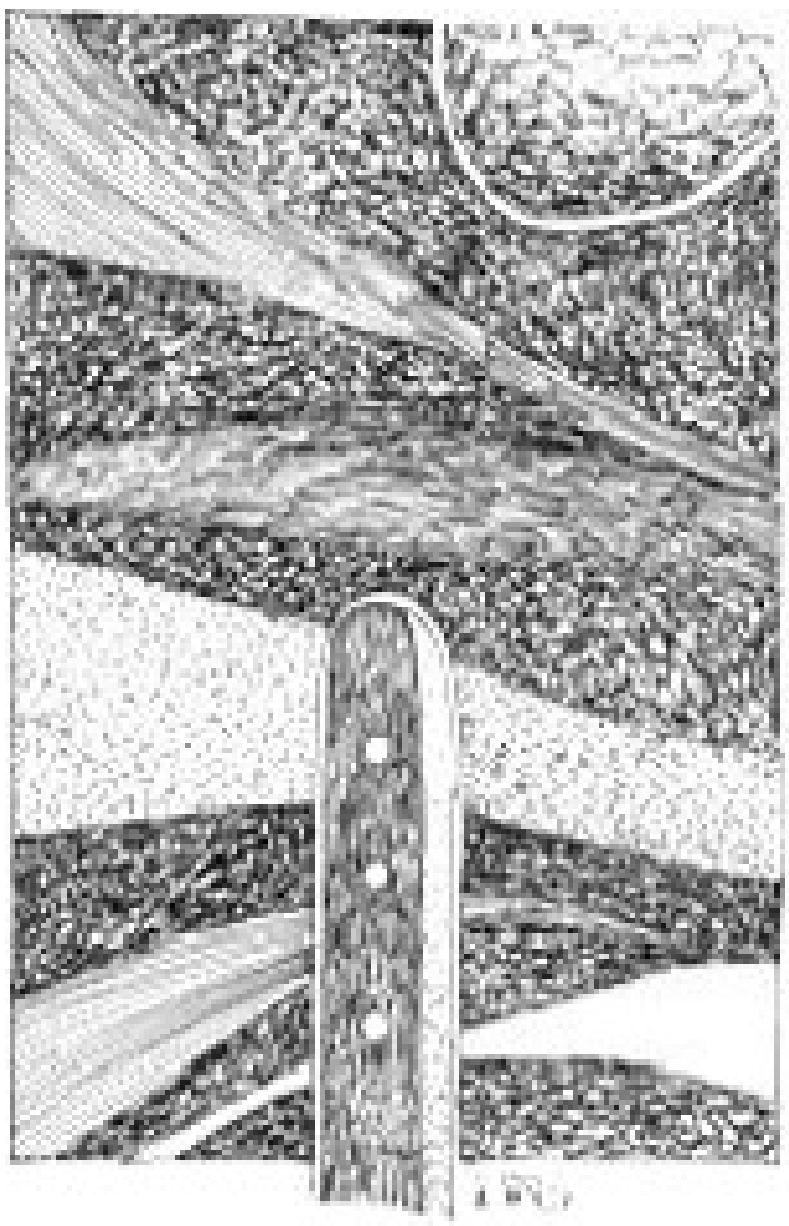

(कुरूआ -पहाड़ पर जहां
साग-सब्जी उगाए जाते हैं।)

मणि मोहन मेहता की कविताएं

मणि मोहन मेहता

कविता मेरे लिए शरणार्थी शिविर है। जीवन के दुःख, उदासी और परेशानियों से घबराकर जहां शरण पाता हूँ और फिर यहीं से ताकत , भरोसा और ऊर्जा लेकर अपने काम पर लौट आता हूँ ।इसलिए कविता लिखना मेरी अहम ज़रूरतों में शामिल है ।यह कविता ही है जो न मुझे थकने देती है और न किसी के आगे झुकने देती है ।

——मणि मोहन मेहता

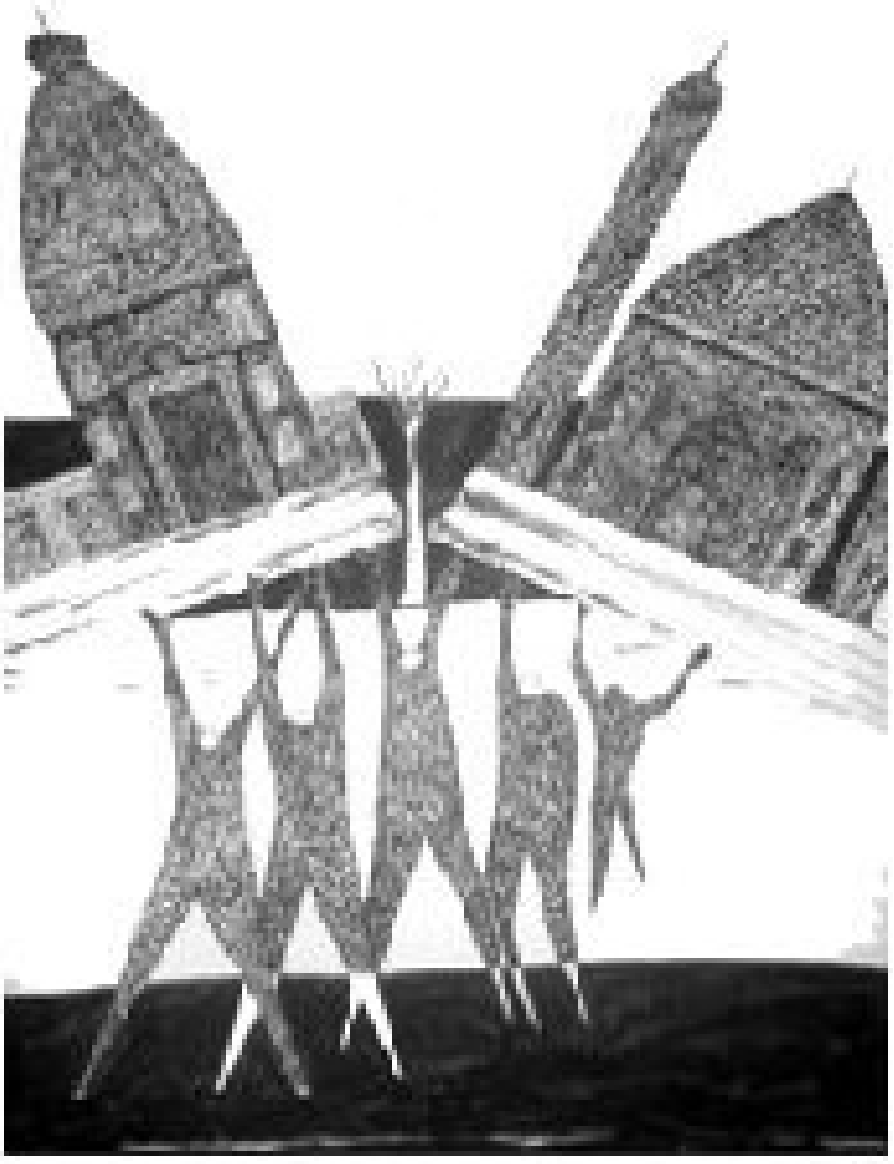

त्रासदी

अपने ही लिखे

शब्दों के अर्थ से

वो इस कदर फिसला

कि डूब ही गया

चुल्लू भर भाषा में ।

दरवाज़ा

मणि मोहन मेहता

हँसो

कि विरोध चल रहा है यहाँ

किसी पागलपन का

हँसो

कि यह आत्ममुग्ध मसखरों का

संधिकाल है

हँसो

कि बस खुलने ही वाला है

सर्जना का दरवाज़ा

मसखरों के लिए ।

भरोसा

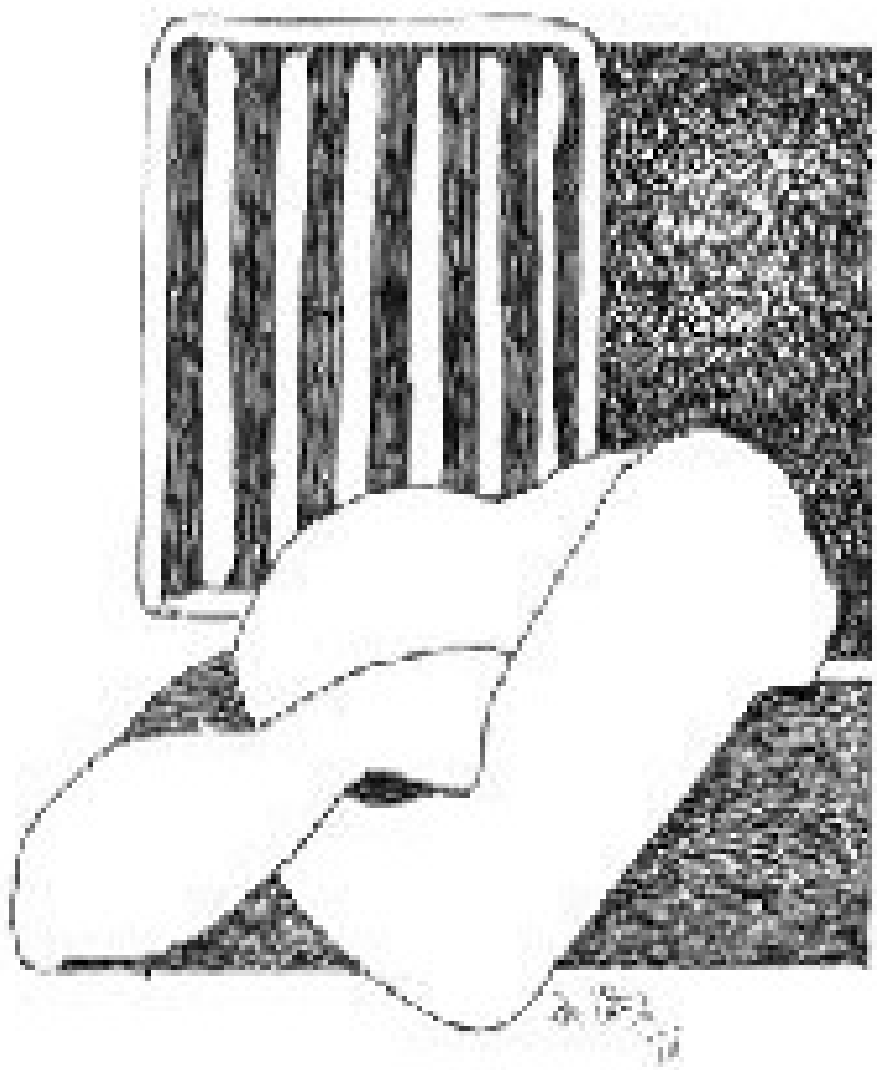

टूटने के लिए ही

बने होते हैं

कुछ शब्द

भरोसा करो

मेरी बात पर !

मणि मोहन मेहता

दु:स्वप्न

देखना एक दिन

नदी आएगी

हमारे शहरों में

गुस्से से फुँफकारती

और बहाकर ले जायेगी

अपनी रेत

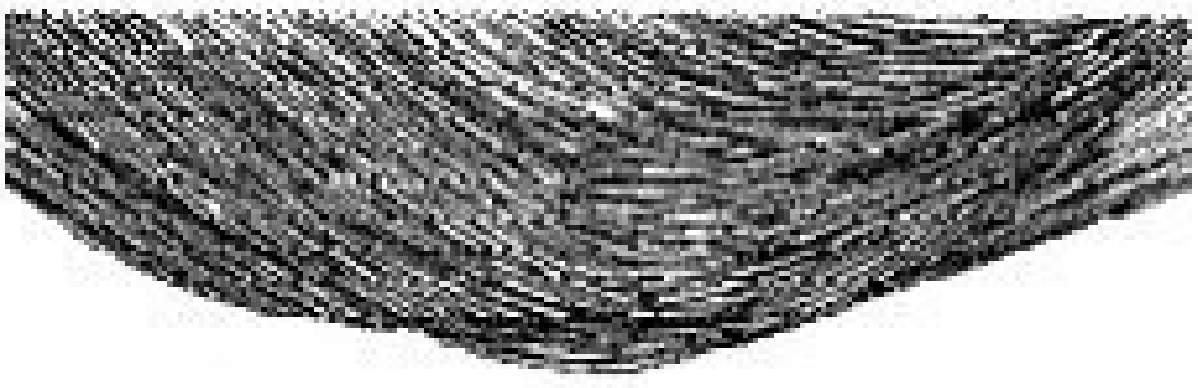

देखना इसी तरह

किसी दिन

समुद्र भी घुस आएगा

हमारे घरों में

और बहाकर ले जायेगा

अपना पूरा नमक

देखना किसी दिन

सच न हो जाये

इस अदने से कवि का

यह दु:स्वप्न ।

ये पल

मणि मोहन मेहता

शोर मत करो
अभी-अभी आकर बैठी है
एक तितली फूल पर

शोर मत करो
अभी-अभी तो
आकर बैठे हैं
इस दृश्य में
ये पल ।

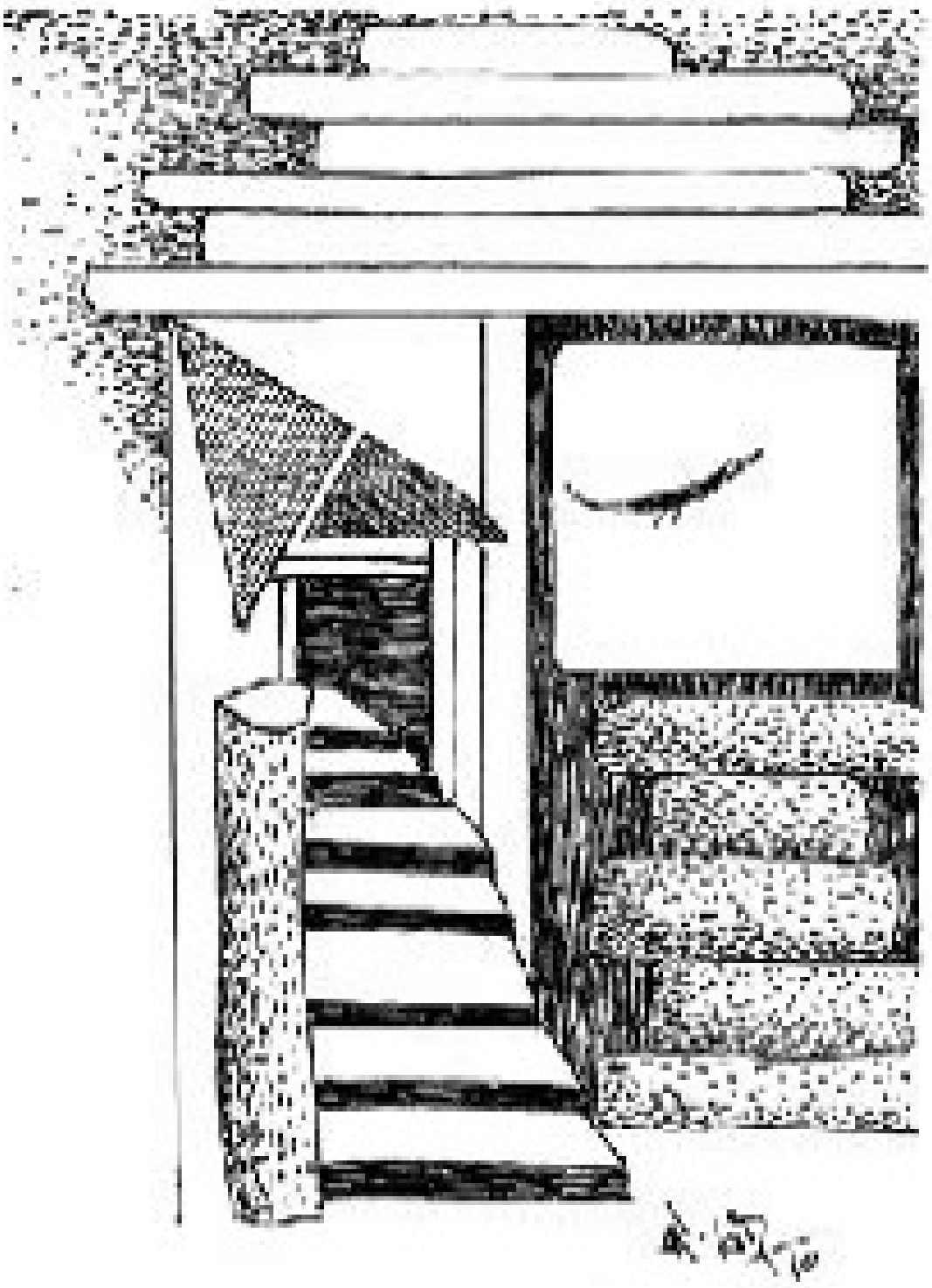

पहेली

अन्धकार में
खिलते हैं
सपनों के फूल . . .
इन्हीं फूलों से
निकलती है
सुबह की रोशनी . . .
इसी रोशनी में
उड़ती फिरती है
जीवन की तितली ।

शब्द और सर्जक

मणि मोहन मेहता

अकसर तो यही होता है
कि सर्जक ही करता है आह्वान
अपने शब्दों का . . .
पर कभी-कभी
इसके ठीक उलट भी होता है
जब शब्द खुद पुकारने लगते हैं
अपने सर्जक को . . .
जो सुन लेता है
अपने ही शब्दों की पुकार
चल पड़ता है
समय के अन्धकार में
अपने शब्दों के पीछे-पीछे
उऋण हो जाता है ।

रोशनी

इस रोशनी में
थोड़ा- सा हिस्सा उसका भी है
जिसने चाक पर गीली मिट्टी रखकर
आकार दिया है इस दीपक को
इस रोशनी में
थोड़ा-सा हिस्सा उसका भी है
जिसने उगाया है कपास
तुम्हारी बाती के लिए
थोड़ा- सा हिस्सा उसका भी
जिसके पसीने से बना है तेल
इस रोशनी में
थोड़ा- सा हिस्सा
उस अंधेरे का भी है
जो दिये के नीचे
पसरा है चुपचाप।

बच्चों के लिए

मणि मोहन मेहता

पता ही नहीं चला
कब एक सयाना
बच्चों के निश्छल मन में
दबे पाँव घुस गया
पता तो
तब भी नहीं चला
जब एक बच्चा
हमारे मन से
यूँ ही दबे पाँव
बाहर निकल गया !

कील

आसान नहीं होते
आसान से दिखने वाले
बहुत से काम
मसलन किसी पक्की दीवार में
कील ठोकना
— जरा-सा हाथ चूका कि
अंगूठे का नाखून
नीला पड़ जाता है...
अब आसानी से तो
वह ईंट भी नहीं बनी होगी
जिससे कोई दीवार बनती है
और न आसानी से
यह दीवार ही बनी होगी
— यह भी तय है
आसानी से न यह
कील बनी होगी न हथौड़ी
पर इतनी आसानी से हम
कहाँ सोच पाते यह सब
यदि अंगूठे का नाखून
नीला नहीं पड़ा होता

दर्शन

यहीं रह जायेगा

सब धरा का धरा

कविता, कहानी, उपन्यास

और तमाम किताबें

मणि मोहन मेहता

यहीं धरा रह जायेगा

किताबों के बीच धरा

तुम्हारा चेहरा भी ।

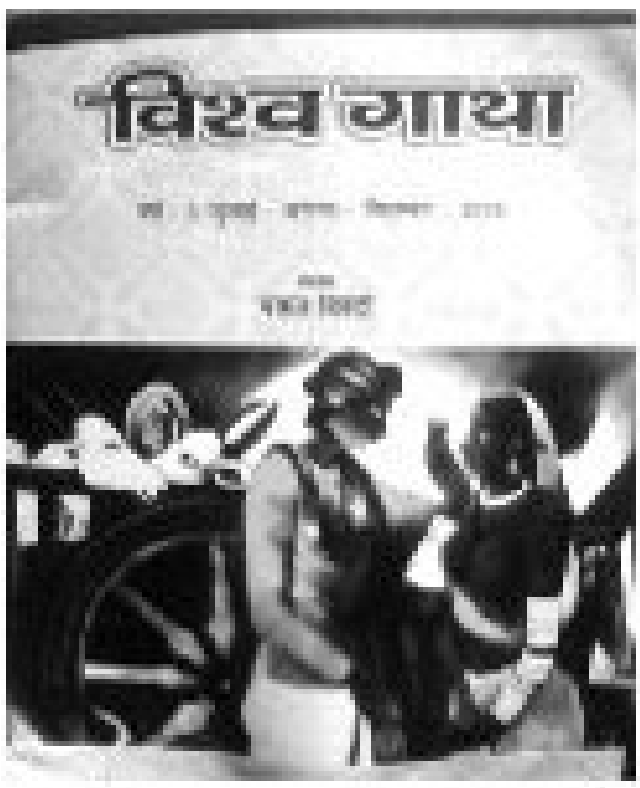

विश्वगाथा: जुलाई-सितम्बर 2015
गुजरात से प्रकाशित,सोशल मीडिया से दीक्षित रचनाकारों को मुद्रित रूप से प्रस्तुत करने का त्रिनम्र प्रयास, कविता, कहानी, आलेख, समीक्षा और सभी स्तम्भ से सज्जित पत्रिका
संपादक : पंकज त्रिवेदी, ओम, गोकुलपार्क सोसायटी, 80फीट रोड सुरेन्द्रनगर, गुजरात 363002
एक अंक : बीस रूपए, वार्षिक 200 रूपए मो. 09662514007

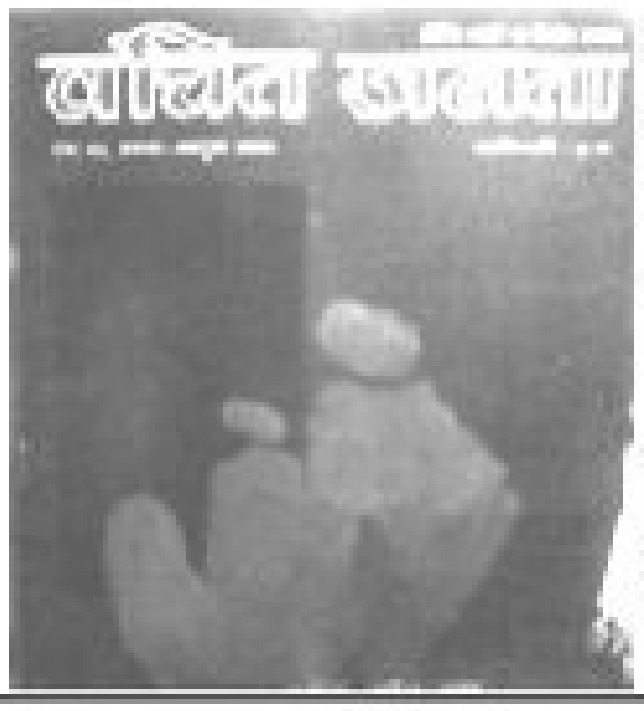

वंचित जनता: अगस्त-अक्टूबर 2015
शोषित तबकों की बेखौफ पत्रिका, पंजाब से प्रकाशित, जनतंत्र और दलित विमर्श पर राम पुनियानी, इरफान इंजीनियर, दुसाध, भंवर मेघवंशी, पंकज चौधरी,राज वाल्मीक, जावेद अनीस के आलेख, सामाजिक न्याय की कहानी, कविताएं, आलोचना.
संपादक : संदीप कौर, माता नसीब कौर यादगारी प्रकाशन, पो. सुनाम, जिला संगरूर, पंजाब 148030
एक अंक : बीस रूपए, वार्षिक 200 रूपए मो. 09463993513

मणि मोहन मेहता

एक दृश्य

घड़घड़ करती गुज़र गई
कोयले से लदी मालगाड़ी
वैगन के बाद वैगन
और फिर गार्ड का डिब्बा

अच्छा लगा
इतने सारे कोयले के बाद
अपने हाथ में
हरी झण्डी लिए
झक्क सफेद कपड़ों में
एक मनुष्य को देखना ।

विचार

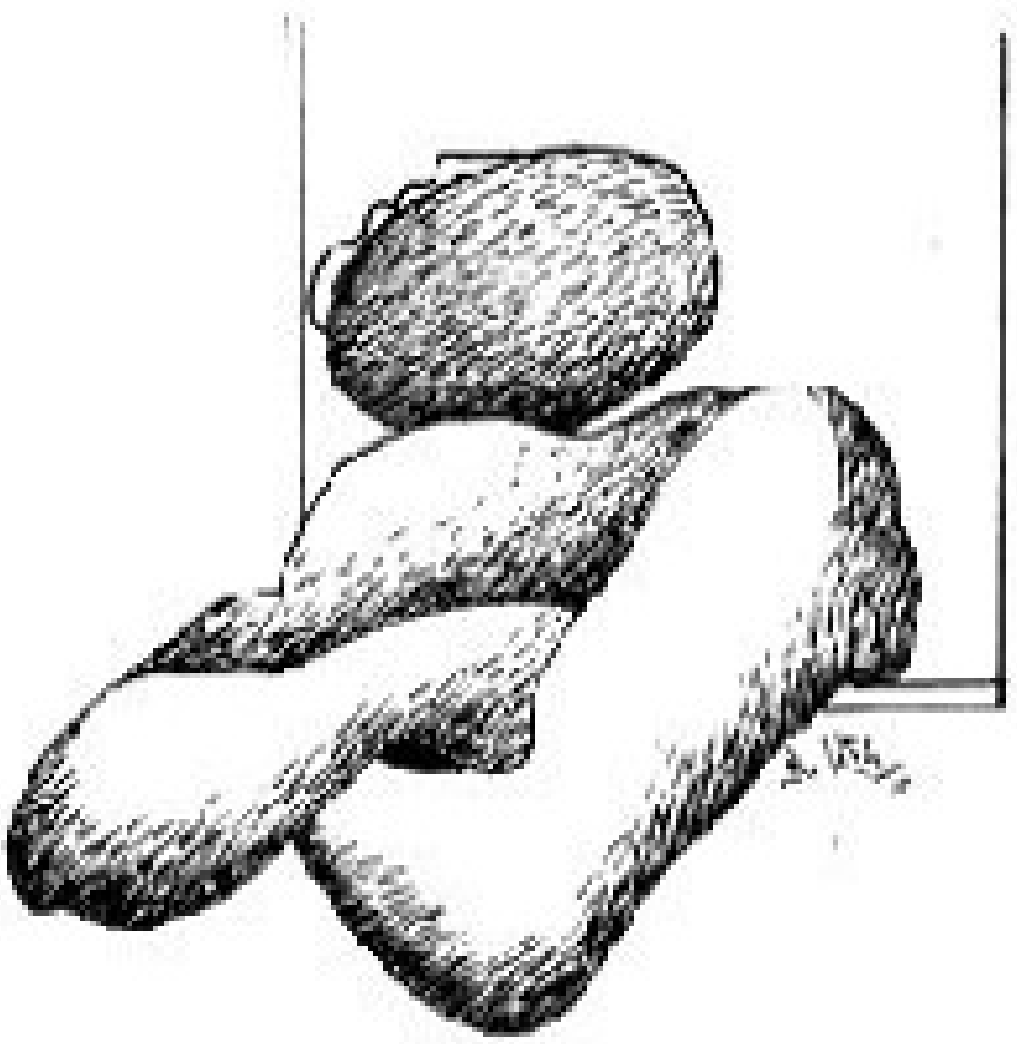

बार - बार जारी हों
जिसे मारने की कोशिशें
तय है
वह मरा नहीं होगा

इसलिए बार - बार
लौटता है वह
हमारी स्मृति के बीहड़ में
विचार बनकर ।

मणि मोहन मेहता

शुभरात्रि

किसी अँधेरी गली के मोड़ पर
कहीं छिपा हुआ खड़ा है
कोई हत्यारा

किसी अँधेरे बन्द कमरे में
छिपी बैठी है
डर से काँपती कोई स्त्री
बस टूटने को ही है
चरमराता हुआ दरवाज़ा

इस रात में
छिपा हुआ है
कितना सारा अशुभ
आप तो शुभरात्रि कहकर
अपने घर चले गए ।

पसीना

क्या बहुत पसीना आता है आपको
बिना कोई श्रम किये ?
तो सावधान !
यह अच्छी बात नहीं
और किसी गम्भीर बीमारी का संकेत है
आलोचना की भाशा में कहूँ तो
आपका पसीना
मौलिक नहीं बंधुवर ।

रीछ

मणि मोहन मेहता

रीछ की सी शक्ल लिए
जाकर धम्म से बैठ जाता हूँ
उसकी कुर्सी पर
ठीक सामने एक आईना था
दुनियाँ का सबसे चमकदार और साफ़ आईना
(वरना इन दिनों किसे फ़ुर्सत है
अपने चेहरों से कि आइनों का ख़याल रखें)
मैं अपना चेहरा देखता हूँ
इस आईने में
और घबराकर अपनी आँखें बन्द कर लेता हूँ
वह अपना काम शुरू करता है
और अगले कुछ मिनटों तक
सिर्फ़ कैंची और कंघे की जुगलबन्दी सुनाई देती है
अचानक संगीत रुक जाता है
और उसकी आवाज़ सुनाई देती है -
अब देखिये बाबूजी !
मैं आँख खोलता हूँ
और उसके आईने से प्यार करने लगता हूँ
वह फिर पूछता है -
'कोई कसर रह गई हो तो बताएं बाबूजी'
मैं सिर्फ़ मुस्करा देता हूँ
और मन ही मन कहता हूँ -
यार, तू तो जादूगर निकला
सिर्फ़ दस मिनिट में रीछ से मनुष्य बना दिया
वह पैसे लेता है बड़े ही विनीत भाव से
और कुर्सी के चारों तरफ़ गिरे बालों को बुहारने लगता है
ज़ेहन में अचानक एक ख़याल आता है
कि वह बालों के साथ-साथ
पल-पल गिरे मेरे अक्स भी बुहार रहा है ।

मणि मोहन मेहता

कब्रगाहों के शब्द

जैसा कि हर भाषा में होता है
अपनी भाशष में भी मौजूद हैं
ऐसे सैकड़ों शब्द
जो दुरूह, अबोध्य, कूट
या उलझे हुए हैं

जरा सा करीब जाओ इनके
तो काटने दौड़ते हैं
और मासूम बच्चे तो इन्हें देखकर ही
सहम जाते हैं

मोटे - मोटे ग्रन्थ और शब्दकोषों में
सरल और सहज शब्दों के बीच
मुर्दों की तरह पड़े हुए
इन्हें देखा जा सकता है

कई बार
कुछ तांत्रिक किस्म के ज्ञानी और जानिया
इन्हें जिन्दा कर
बाहर भी निकाल लाते हैं

पर सुकून की बात यह
कि ज्ञानी और जानिया
इनके ही हाथों मारे जाते हैं

और ये शब्द
वापिस लौट जाते हैं
अपनी कब्रगाहों में ।

मणि मोहन मेहता

गिनती

गिन रहा हूँ
अपराजिता की लता में लगे
छोटे छोटे नीले शंख

गिन रहा हूँ
अपने अन्डे उठाये भागती चींटियों को

गिन रहा हूँ
अमरूद के पेड़ पर बैठे हरियल तोतों
और सिर के ऊपर से उड़ान भरते
सफेद कबूतरों को

गिन रहा हूँ
अनगिनित
पेड़, परिंदे
फूल , तितली
स्कूल से घर लौटते
धींगा-मस्ती करते बच्चों को

बहुत अबेर हुई
बन्द हो चुके तमाम बैंक
खत्म हुए
संसद और विधानसभाओं के सत्र
बन्द हुए
गिनती से जुड़े तमाम कारोबार
धीरे-धीरे फैलने लगा है अँधेरा
पर अभी चैन कहाँ
अभी तो सितारों से सजा
पूरा आसमान बाकी है ।

छायाकार

मणि मोहन मेहता

बहुत खूबसूरत तस्वीर है
कविता के साथ
कवि की -
हाथ में कलम
शून्य में झाँकतीं
सपनीली सी आँखें
और सिर के पीछे
एक दिव्य प्रकाश पुंज सा...

और कविता?
इस पर फिर कभी...

फ़िलहाल तो
जिसने उतारी है
कवि की यह तस्वीर
उस छायाकार को सलाम ।

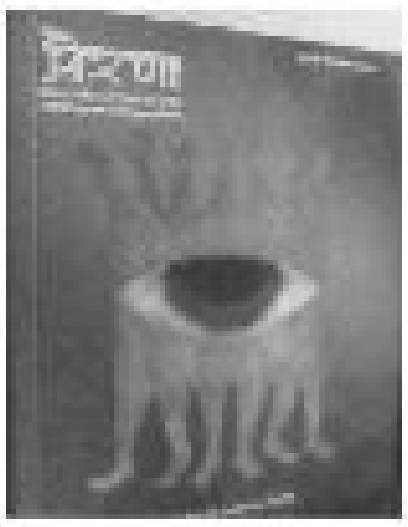

प्रेरणा : जुलाई-सितम्बर 2015
विश्व हिन्दी सम्मेलन पर विशेष सामग्री। विदेशों में हिन्दी भाषी लेखक और भारतीय लेखकों के महत्वपूर्ण आलेख। पंखुरी सिन्हा, कुशेश्वर की कविताएं
संपादक : अरूण तिवारी, ए74, पैलेस आर्चेड फेज3, कोलार रोड, भोपाल मप्र
एक अंक : तीस रूपए, वार्षिक 100 रूपए मो. 09822682750

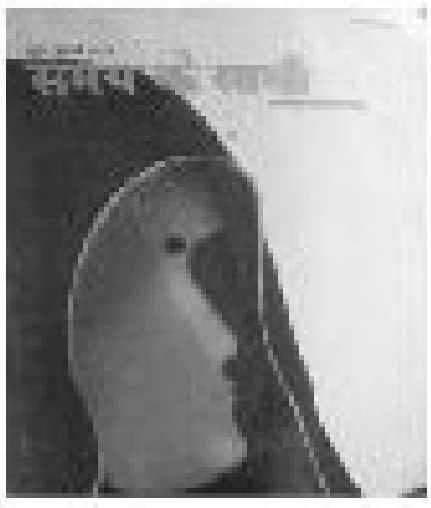

समय के साखी : जून-जुलाई-2015
स्त्री-विमर्श पर विचारोत्तेजक संपादकीय, अमरनाथ,प्रेमचंद गांधी की परिचर्चा, विवेक मिश्र प्रदीप चौबे की कहानियां, मनोज कुमार पांडेय की कविताएं
संपादक : डॉ. आरती, बी-509,जीवन विहार कालोनी,पी एंड टी चौराहा, भोपाल
एक अंक : पचास रूपए, वार्षिक 250 रूपए मो. 09713035330

बारिश (एक)

मणि मोहन मेहता

यह रेनकोट पहने हुए
आदमी का
एकालाप नहीं
प्यासी धरती की कोख में
दुबके हुए
बीज की प्रार्थना है ।

बारिश (दो)

हम तो सिर्फ इंतज़ार करते हैं
बारिश का
वो बादलों के बीच
घटा तलाशता है

अभी - अभी
लौटा है वो
अपनी धरती में
सपने बोकर

हमारे पास तो
कुछ भी नहीं
बोने के लिए
कुछ भी नहीं
खोने के लिए
सिवा इंतज़ार के ।

राजीव कुमार त्रिगर्ती की कविताएं

राजीव कुमार त्रिगर्ती

गांव से हूं, आज भी समय के साथ करवट बदलते गांव से ही वास्ता है। जीवन का वह हिस्सा जब हाथ लेखनी पकड़ने के लिए बेताब था, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के माहौल में बीता। वाराणसी की खरपतवार और रासायनिक उर्वरक-रहित साहित्य की भूमि में कब कवित्व का बीज अंकुरित हुआ कुछ पता ही नहीं चला। भीतर के उद्गारों को अपने ढंग से व्यक्त कर पाने की हसरत से ज्यादा आत्मसंतुष्टि शायद ही कहीं होती हो। असल में पहाड़, जंगल, घाटियाँ, कलकलाती नदियां हैं तभी तो पहाड़ में प्रेम है। इनके होने से ही जीवन जटिल है तभी तो पहाड़ में पीड़ा है। यहां प्रेम और पीड़ा का सामंजस्य अनन्तकाल से सतत् प्रवाहित है। प्रकृति के सान्निध्य में सुख-दुःख के विविध रूपों को उभारना अच्छा लगता है। मेरे लिए यह बहुत है कि प्रकृति के सानिध्य में भीतर के उद्गारों को व्यक्त करने का एक खूबसूरत तरीका मिल गया है। भीतर के उद्गार को अपने ही शब्दों में व्यक्त करने के आनन्द की पराकाष्ठा नहीं और यह आनन्द ही मेरे लिए सर्वोपरि है। ————राजीव कुमार त्रिगर्ती

राजीव कुमार त्रिगर्ती

मिट्टी

एक दिन जब तुम्हारे हाथ
खाली हो जाएं
कुछ भी न बचे उनमें पाने के लिए
तुम्हारी हताशा
तुम्हारे चेहरे से उतरकर
कांपने लगे खुली खाली हथेलियों में
तब भी तुम्हें संभालने के लिए
तुम्हारे करीब
तुम्हारे हाथों में
आने के लिए बेताब होगी मिट्टी
वैसे मिट्टी के अतिरिक्त
कुछ होता भी क्या है
इस दुनिया में पाने के लिए
एक मिट्टी ही तो है
हमारे पसीने से निकलकर
हमारी सांसों में हमारे भीतर समा जाती है
फिर से पसीने में बहने के लिए
लाख कोशिशों के बावजूद भी
नहीं मिटती है जिसकी गंध
कभी नहीं खोती है
एक मिट्टी ही तो है
जो हर किसी की जरूर होती है।

आज़ादी का मतलब

राजीव कुमार त्रिगर्ती

आज़ादी का मतलब
झंड़ा फहराने वाले कार्यक्रमों में भाग लेना है
तो हम आज़ाद हैं,
आजादी का मतलब यदि
टीवी के विविध चैनलों पर
या बड़ी जद्दोजहद के बाद
लाल किले की प्राचीर से
लम्बी-चौड़ी हांकते हुए
शीर्ष-पुरूषों को सुनना होता
तो हम आज़ाद हैं,
आज़ादी का मतलब
घूमने के लिए मिली
एक अदद छुट्टी से होता
तो भी हम आज़ाद हैं,
हम उन सभी अर्थों में
सचमुच आज़ाद हैं
जिनका आज़ादी से
कोई भी गहरा ताल्लुक नहीं
काष, आजादी का मतलब यहीं तक होता
तो हम शर्मिन्दा न होते
आज़ादी पर
अपने ही हाथों अपनी बर्बादी पर।

आवेग : अगस्त-सितम्बर 2015
लीलाधर जगूड़ी की कविताएं, बातचीत
मोहन कुमार नागर, शकुन्त, रजनीकांत शर्मा की कविताएं, नंद चतुर्वेदी की स्मृति में वेद व्यास का आलेख
संपादक : हरिशंकर अग्रवाल, इंदिरा गांधी वार्ड, पिपरिया, होशंगाबाद मप्र
एक अंक : बीस रुपए, वार्षिक 200 रुपए 09424435662

राजीव कुमार त्रिगर्ती

नदी का खोना

ऐसा नहीं
बादलों ने हमेशा पानी बरसाया
बादल होने के लिए
ऐसा नहीं कि
पहाड़ों ने हमेशा बर्फ ढोया
पहाड़ होने के लिए
पर नदी होने के लिए
बनी रही पानी की जरूरत
हमेशा ही नदी में।

बिना पानी के बादल
बादल ही रहे
बिना बर्फ के पहाड़
पहाड़ ही रहे
पर बिना पानी की नदी
खो बैठी अपनी संज्ञा
बन गयी रेत।
दिन की धूप में गर्माती
रात की शीतलता में ठंड़ाती
बारिश में भीगती तो सिहर जाती।

नदी का खोना
रेत का महल होना है
वजूद का रोना है।

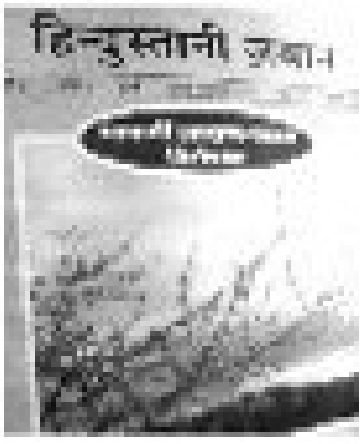

हिन्दुस्तानी जुबान : जुलाई-सितम्बर 2015
रवीन्द्र कुमार, नंदकिशोर नौटियाल, सुशीला शर्मा, आलोक भट्टाचार्य आदि के आलेख, पद्मा सचदेव, बालकृष्ण पिल्लै, पाटिल की कविताएं, सुशांत सुप्रिय, कृष्ण शर्मा, प्रज्ञा शुक्ल की कहानियां
संपादक : सुशीला गुप्ता, म.गां.मेमोरियल रिसर्च सेण्टर, म.गां.मे.बिल्डिंग, 7 नेताजी सुभाष मार्ग, मुंबई 400002 मू. : बीस रूपए, 22812871

राजीव कुमार त्रिगर्ती

बताना मुझे

हमारे पास वक़्त नहीं होता
दिन में सोने का
रोटी कमाने का कीमती वक़्त
सोकर खोने का
हालांकि सो भी जाएं
तो नींद नहीं आएगी
पेट कह अंगीठी
आंतड़ियों को जलाएगी
और इसी आंच का डर
सोने नहीं देता,
ऐसी ही हैं हमारी रातें भी
जगमगाते शहरों में भी अंधियारी
ऐसे में कभी आ जाती है झपकी
तो आते हैं सपने
सुना है सपनों में आती है परियां
परन्तु हमारे सपनों में आती है
एक-दूसरी पद लदी चिन्ताएं
लद जाती है छाती पर
उचट जाती है आने से पहले ही नींद,
जिंदगी पहाड़ सी है हमारे सामने
और हम कर रहे हैं कोशिश
नंग-धड़ंग
सर्दियों में पहाड़ लांघने की
बेबसी के चेहरों पर
मुस्कुराहट का मुखौटा लगाकर।

सच में भयावह है

राजीव कुमार त्रिगर्ती

तुम पुस्तक लिखो
मैं उसे छापूंगा जिल्द लगाऊंगा
तुम साज बनाओ
मैं बजाते हुए गान गाऊंगा
तुम भवन बनाओ
मैं उसे सजाऊँगा संवारूंगा
तुम चित्र बनाओ
मैं भरता हूँ रंग
तुम निर्देशन करो
मैं करूँगा अभिनय
तुम नाचो खुलकर
मैं बजाऊँगा ढोल
तुम पत्थर तो लाओ
मैं उसे तराशूंगा
तुम रचो स्वांग
मैं हंसूंगा जोर से
कभी तुम मुझसे रहो
कभी मैं तुमसे रहूँ
पर जब नहीं हो रहा हो
इन कामों में से कोई काम
तब मैं मैं होता हूँ
और तुम तुम होते हो
सच में भयावह है
मेरा बस मैं होना
तुम्हारा बस तुम होना।

निकट : सितम्बर-दिसम्बर 2015
जयनंदन, प्रज्ञा, अखिलेश मिश्रा की कहानियां, सुधा उपाध्याय, नरेंद्र पुण्डरीक, अपर्णा वकुल की कविताएं, असीमा भट्ट का आलेख आदि
संपादक : कृष्ण बिहारी,. : बीस रूपए, 2281287 1

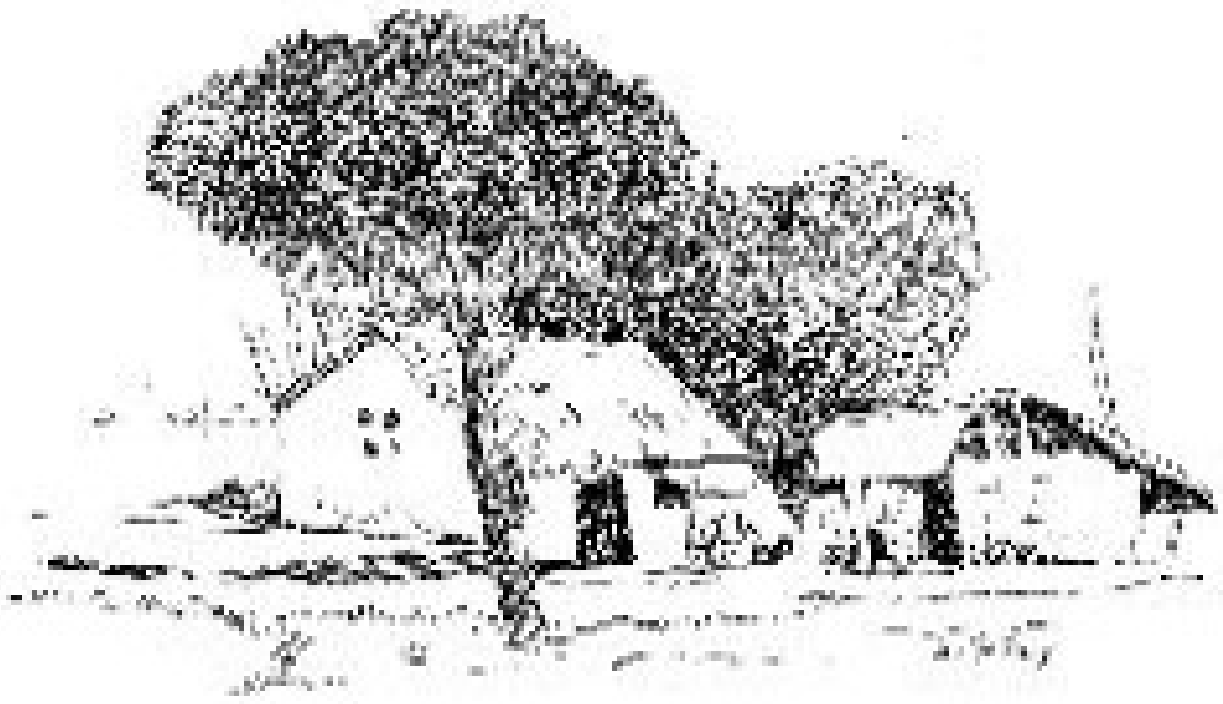

राजीव कुमार त्रिगर्ती

जादुई स्पर्श

सियासत

वे उन्हें भी मारते हैं
जो उनकी बात नहीं समझते
वे उन्हें भी मारते हैं
जो उनके साथ होते हैं
वे उन्हें भी मारते हैं
जो कुछ नहीं कहते
कोई सियासत नहीं रचते
ज्यादातर वे ही होते हैं शिकार
छिछली सियासत का,
सियासती तो होते ही हैं शिकारी
आज नहीं तो कल तुम्हारी बारी।

खेत, खेत नहीं रहते
भवनों के नीचे दब जाने पर
उभर आने पर किसी भी तरह की
सड़क-पटरी या कोई रास्ता
कोई भी अनपेक्षित निर्माण,

खेत, सूख जाने पर भी
दह जाने पर भी
बहुत कुछ सह जाने पर भी
किसान का हाथ लगते ही
बन जाते हैं फिर खेत
अगली फसल के लिए।

ककसाड़ अक्टूबर 2015
जनजातीय चेतना, कला साहित्य
संस्कृति की पत्रिका
संपादक : डॉ राजाराम त्रिपाठी,
151, डीएनके हर्बल स्टेट,
कोड़ागांव छग 494226
पच्चीस रूपए, 09425258105

गजल गरिमा : जु-सि.2015
गजल की त्रैमासिकी
सं. भानुमित्र
1 डी 8, नंदनवन, जोधपुर
राज. 342008
यह अंक : तीस रूपए
09413521354

छल-कपट

राजीव कुमार त्रिगर्ती

वे चीखते हैं जोर-जोर से
सब कुछ दे रहे हैं
सब तक तो पहुंचा रहे हैं सब कुछ
सब कुछ ही तो चाहिए सबको
जो दिया जा रहा है
यहां तो सब कुछ के लिए
मना ही नहीं है कभी
तो कुछ की तो बात ही क्या
वे जिसे दिया हुआ बताते हैं
वह उनकी देने की कायलियत से नहीं
छद्म सोच का परिणाम है
या प्रारब्ध है प्राप्तकर्ता की
वे दम्भ से हुंकारते हैं
ऊंचे मंच पर खड़े होकर
जैसे कि सब कुछ उन्होंने
अपनी जेब से दिया
या इससे भी बढ़कर दयावीर बने
और खुद को बेचकर दिया
खुद को दांव पर लगाकर दिया

जबकि हर बार तुम्हारी ही जेब कटी
तुम ही बिके मिट्टी के मोल
तुम ही दांव पर लगे कौड़ियों के भाव
उस मुस्कुराते मंचासीन के लिए
जो जोर-जोर से चिल्लाता है
हवा में बातें बनाता है
और अपना तिलिस्म चलता देख
अन्दर ही अन्दर मुस्कुराता है
तुम्हारे बहरे होने की हद से भी आगे।

अकी सच्चाई

राजीव कुमार त्रिगर्ती

जिन्होंने दुम हिलाने के अलावा
सीखा भी
तो बस तलवे चाटना
वे अपने किए पर
खूब इतराते हैं
अपने आप को
आज के युग का
सफल आदमी बताते हैं
हमारे शहर के कुत्ते
ऐसे लोगों से कतराते हैं
या शरमाते हैं
वे ही जानें
पर यह जांचा-परखा सच है
कि वे उनकी छाया से भी
भाग जाते हैं।

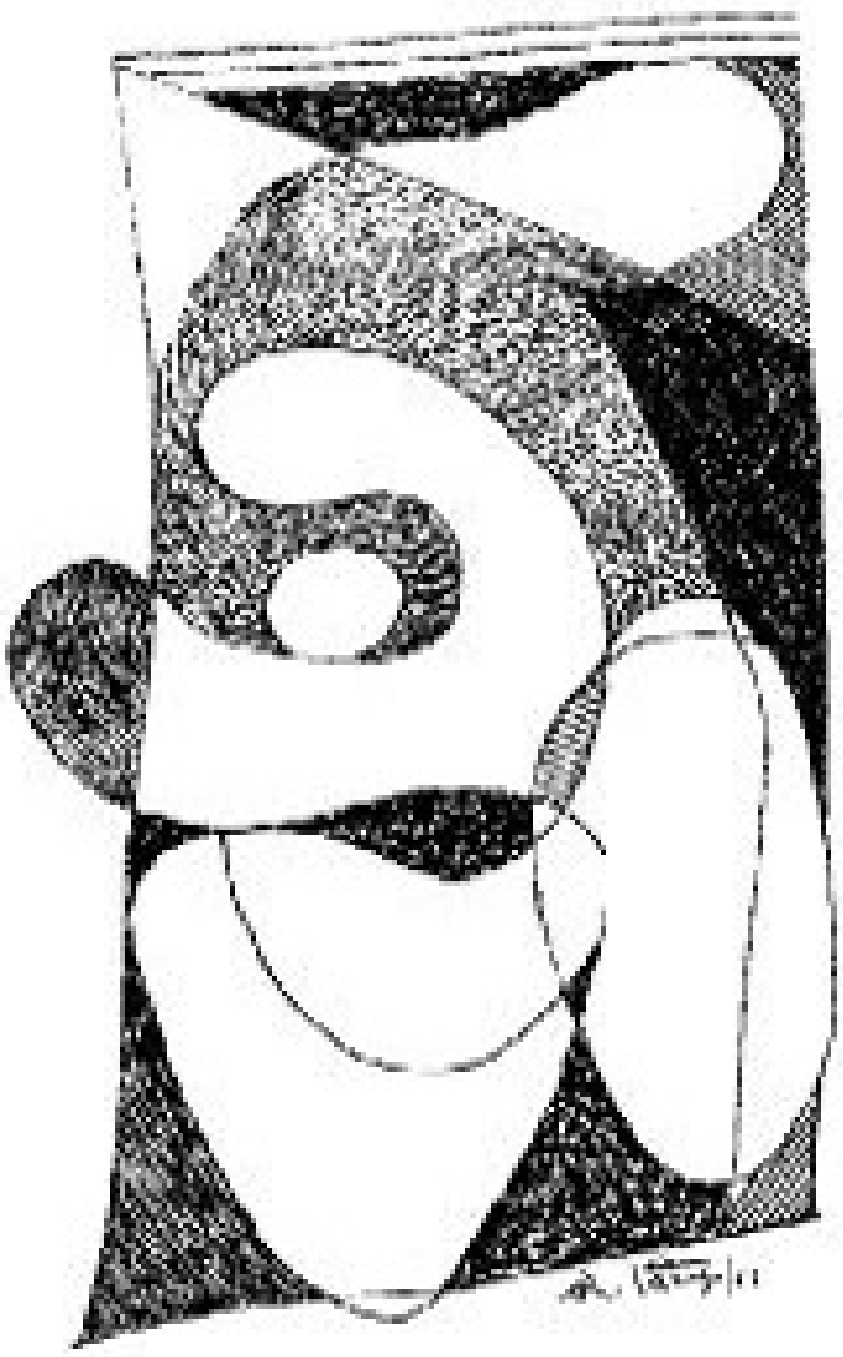

पहाड़ की नदी और महानगर की सड़कें

पहाड़ की नदी के उफान में
बह जाता है सब कुछ
पेड़-पत्थर और आदमी भी
सब कुछ हो जाता है
टुकड़े-टुकड़े, कण-कण
बिखर जाता है
विलीन हो जाता है सब कुछ
लोग डरते हैं
पहाड़ की नदी से
इधर
महानगर की सड़कों पर भी
विलीन हो जाता है आदमी
कण-कण बिखरा हुआ आदमी
तलाशता है सपने
कण-कण जुड़ने के
टुकड़े-टुकड़े जुड़ने के
विलीनता से उबरने के।

सफर में पानी की पुरानी बोतल

राजीव कुमार त्रिगर्ती

कहां और कैसे भरी जाती हैं इतनी बोतलें
कितना खरा उतरता है इनमें भरा पानी
स्वच्छता के मानक पर
मैं नहीं जानता
बस जानता हूं तो इतना कि
तरह-तरह के नामों की पट्टी चढ़ी
ये बोतलें उपलब्ध है आज हर कहीं
अटे पड़े हैं सारे के सारे प्लेटफार्मों के स्टाल
गाड़ी के अंदर भी बेची जाती हैं
बर्फ भरी बाल्टियों में डालकर
बस-अड्डों, होटलों से ढाबों तक
बड़ी दुकानों से मामूली गुमटियों तक
शहरों से गांव तक
शोक या हर्ष के किसी भी अवसर पर
परोसा जाता है बन्द बोतलों में पानी
मैं जानता हूं यह भी कि
विकास के इस अत्याधुनिक युग में
कहीं से भी गैरज़रूरी नहीं दिखता इनका प्रयोग
तब अक्सर जब भी मैं निकलता हूँ
छोटी-बड़ी यात्रा पर तो डाल देती है पत्नी
घर में सहेजकर रखी
किसी पुरानी मिनरल वाटर बोतल में
रसोई के फिल्टर से पानी
और अपने सामान में जगह न होते हुए भी
बनाता हूं मैं उसके लिए जगह
या यूं समझिए ठूंस लेता हूं
सफर में दूर करने के लिए गले का सूखापन
घूंट-घूंट संभालकर पीता हूं
कभी-कभी खत्म हो जाता है
उसी बोतल से मेरा सफर
फेंकने से बेहतर समझता हुआ
सफर की समाप्ति से पूर्व

खाली हुई बोतल को
फिर ठूंस लेता हूं सामान में
और पहुंच जाता हूं घर
बोतल पहुंच जाती है अपने ठिकाने पर
लेटे-लेटे करती रहती है
मेरी अगली यात्रा का इन्तज़ार,
कई बार सफर में एक स्थान से दूसरे स्थान
एक गाड़ी से दूसरी गाड़ी बदलने के चक्कर में
सामान के ज़्यादा होने
और जगह की कमी के कारण
पूरा मन बना लेता हूं कि फेंक दूं पुरानी बोतल
पर पता नहीं कैसे भरे-पूरे सामान में भी
निकल ही आती है जगह
उसे ठूंसने भर की।

राजीव कुमार त्रिगर्ती

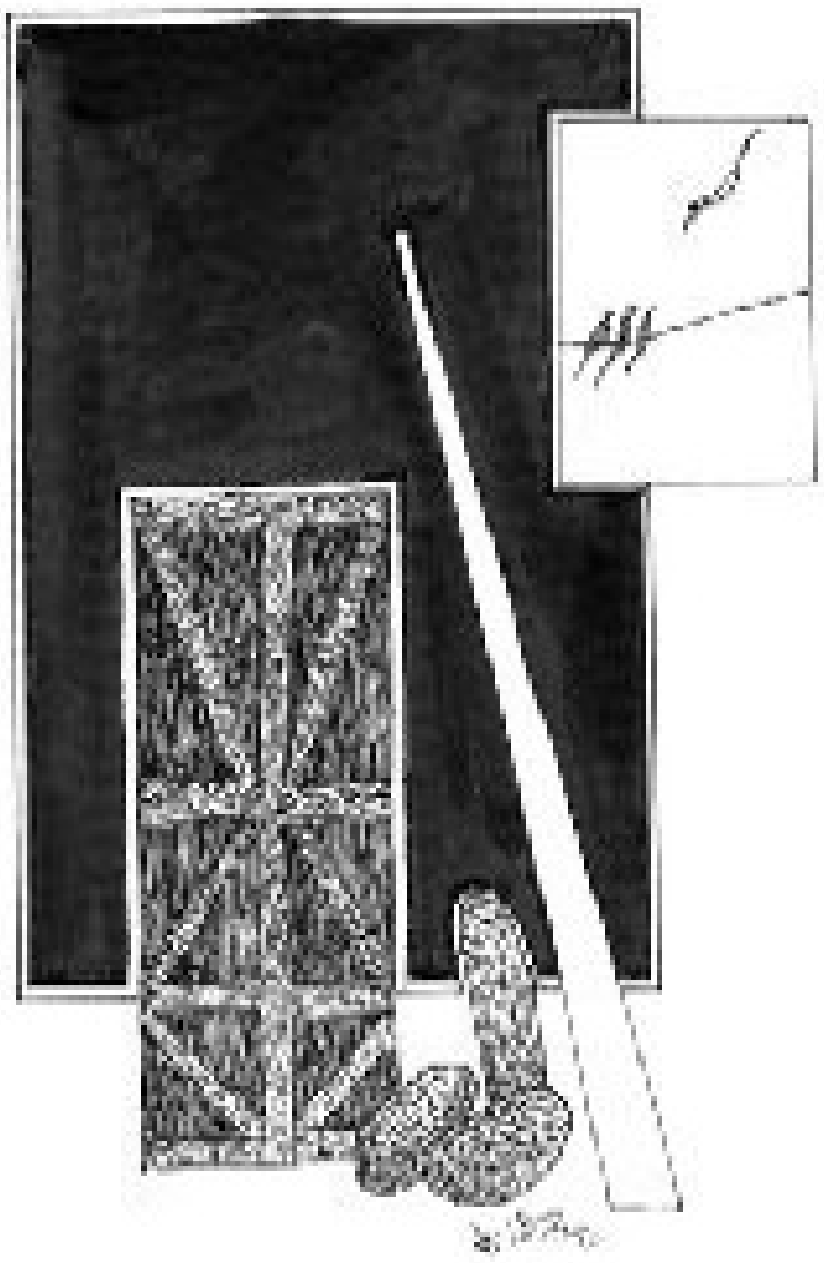

पहाड़

पहाड़
हर तरफ पहाड़
ऊंचे पथरीले नुकीले पहाड़
पहाड़ियों के पहाड़
बिलकुल अपने पहाड़
चुभते, ज़ख्म देते हुए भी अपने पहाड़
इतने अपने कि दिखते हैं हमेशा
बहुत कुछ देते हुए ही
मीठा पानी, शीतल हवा, हरियाली, निर्मलता
लेकिन तुम निःसंदेह उकता जाओगे
पहाड़ से
जिन कदमों से आए
उन्हीं कदमों से चले जाओगे
पहाड़ से
पर पहाड़ी आए नहीं हैं यहां कहीं से
वे हुए हैं अवतरित यहां
दुखों से सुख चुनने के लिए।

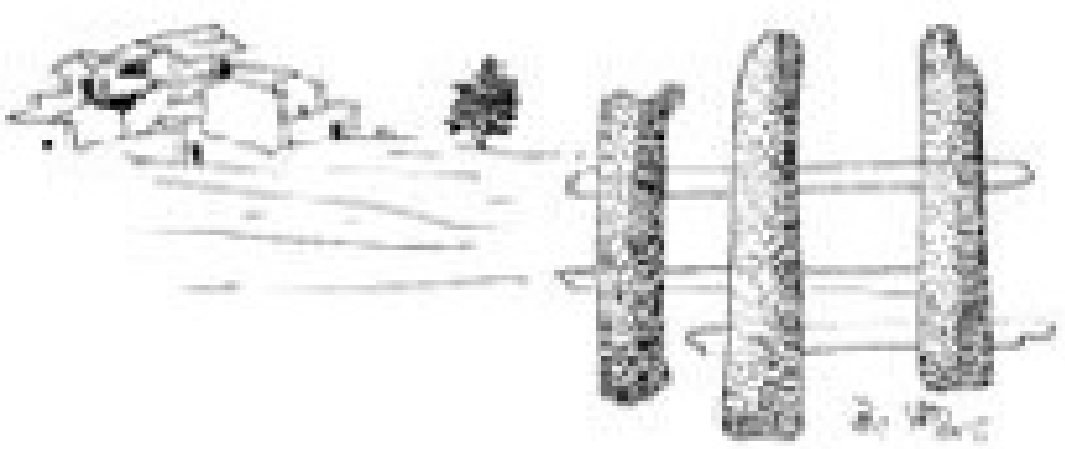

राजीव कुमार त्रिगर्ती

दुर्दिनों के बारे में

वे कांटे में फंसा रहे हैं चारा
फेंक रहे हैं कांटा नदी में
उफनती नदी के किनारे खड़े होकर
वे कर रहे हैं इन्तज़ार कि फंसेगी ज़रूर
वे सिर पर मोमजामा ओढ़े लगे होंगे
धान की रोपाई में बिना कोई निमेष गवांए
घुटनों तक पानी में डूबे
ट्रेन के डिब्बों में मौसमी लिहाज से
ककड़ियां, दाल-मसाला, चीनिया-बादाम बेचकर
भरे-पूरे परिवार को पालते
और बुरे वक़्त के लिए बचाते हुए कुछ पैसे
एक बार फिर वंचित रह जाएंगे
क ख ग की पहचान से
कल फिर संभालेंगे देश वही
जिन्होंने पढ़ा होगा किताब में -
कैसे फंसती है मछली
और कैसे भरता है पेट
कितना लम्बा होता है फसल चक्र
पेट में जाने या उसके बहुत बाद तक
और कैसे की जाती है बचत
परिवार पालने के बाद भी
शिक्षा, बेरोजगारी, भूख, गरीबी पर बहस
यूं ही चलती रहेगी अकारण
अनुभव की श्रेष्ठता का हक
हम यूं ही छोड़ते रहेंगे।

कविता-संग्रहों पर राय :

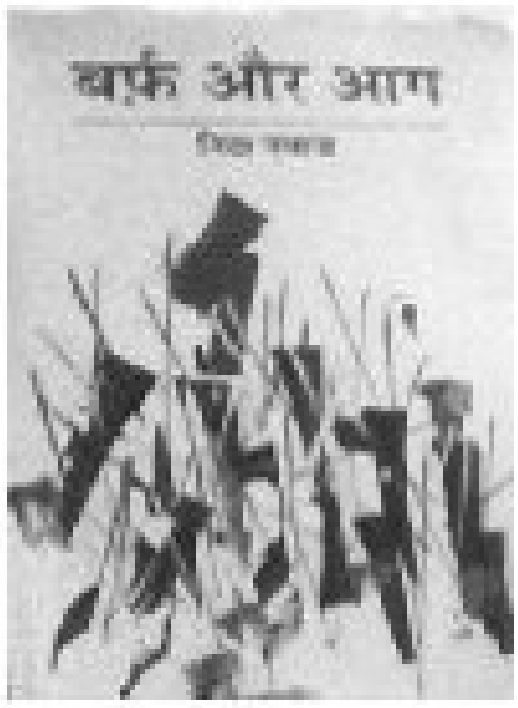

निदा नवाज़ कश्मीर घाटी में, बिना किसी सुरक्षा घेरे में रहे, आम लोगों के बीच रहकर अभिव्यक्ति के खतरे उठा रहे हैं। पंद्रह वर्ष पूर्व उनका एक कविता संग्रह 'अक्षर-अक्षर रक्त भरा' प्रकाशित हुआ था जब घाटी में दहशतगर्दी चरम पर थी। सीमा पार से अलगाववाद को मिलता समर्थन भारतीय प्रशासन के लिए हमेशा चिंता का कारण रहा है ऐसे में अपने लोगों के मन की बात को कठोरता से बाहद जनमानस तक पहुंचाने का बीड़ा निदा नवाज़ ने उठाया है, जो काफी स्तुत्य है और बेशक इससे उन्हें भी मानसिक और शारीरिक प्रताड़ना से गुज़रना पड़ा है।

जिन परिस्थितियों में निदा नवाज़ सृजनरत हैं वहां अस्मिता, राष्ट्रीयता और साम्प्रदायिकता के मसले बेहद उलझे हुए हैं कि उस पर बात करते हुए अरझ जाने का खतरा बना रहता है। निदा नवाज़ अपनी सीमाएं जानते हैं और बड़ी शालीनता से आम कश्मीरीजन की पीड़ा को स्वर देने का विनम्र प्रयास करते हैं। 'बर्फ़ और आग' में भी निदा नवाज़ ने लाऊड हुए बिना अपने लोगों की पीड़ा का सटीक दस्तावेजीकरण किया है। हिन्दी में ये कविताएं इसलिए भी महत्वपूर्ण हैं कि इन कविताओं के ज़रिए हम कश्मीरियत और कश्मीरीजन की पीड़ा को व्यापक रूप से जान पाते हैं। कवि इन विपरीत परिस्थितियों में भी उम्मीद का दामन नहीं छोड़ता और यही कवि और कविता की विजय है।

'किसी सुनामी की तरह/ रास्ता निकालती है/ मेरी रचना / मेरे सारे कबूतर लौट आते हैं वापस / छप जाते हैं / मेरी बौद्धिक कोशिकाओं में / और एक ऊंची उड़ान भरने के लिए/ आने वाले करोड़ों वर्षों पर फैले / बहुत सारे आसमानों पर... (पृ. 11)

संग्रह की तमाम कविताएं जैसे बड़ी शिद्दत से पाठक से कनेक्ट होती हैं और बेधड़क सम्वाद करती हैं। फ़ैज़ के पास जिस तरह से 'सू ए यार से कू ए दार' की बातें होती हैं उसी तरह से निदा नवाज़ एक साथ बर्फ़ और आग के गीत गाते हैं। वे बहुत चौकन्ने कवि हैं जो जानते हैं कि---'आम लोगों को नींद में मारने के लिए / दो बड़े हथियार थे उनके पास / धर्म भी / और राजनीति भी!' निदा नवाज़ ऐसे लोगों के बीच सृजनरत हैं जहां---'उस शहर के बुद्धिजीवी / दर्शन के जंगलों में / सपनों को ओढ़कर / सो जाते हैं / और बस्ती के बीच / तर्क का हो जाता है अपहरण!'

मेरा विचार है कि निदा नवाज़ की कविताओं को इसलिए पढ़ा जाना ज़रूरी है कि इसमें एक ऐसी नागरिक पीड़ा व्यक्त है जिससे देश के अन्य हिस्से के कवि नहीं जूझा करते...रोजी, रोटी, मकान के अलावा जो देशभक्ति का सबूत मांगे जाने की पीड़ा है उसे जानने के लिए इन कविताओं को अवश्य पढ़ा जाना चाहिए।

बर्फ़ और आग : निदा नवाज़ : 2015 पृ. 112 मूल्य : 235.00

प्रकाशक : अंतिका प्रकाशन, सी-56 / यूजीएफ-4, शालीमार गार्डन, एक्सटेंशन 2

गाजियाबाद उप्र

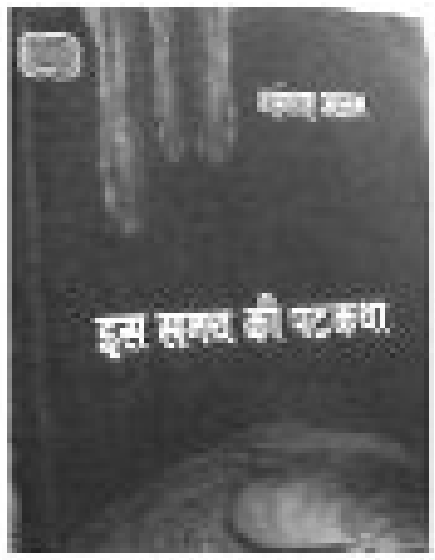

पृथ्वी, प्रकृति, परिवेश और लोक के इर्द-गिर्द बड़ी बारीकी से बुनी गई कविताएं यदि पढ़ने को मिलें तो बरबस शहंशाह आलम का नाम याद आता है। शहंशाह आलम हिन्दुस्तानी समाज की घरहू बनावट और उसकी तासीर के अद्भुत चित्रकार हैं। वे कविताओं में बोलते हैं तो शब्दों से जैसे रंग झरते हैं, आकृतियाँ आकार लेती हैं और एक अनहद नाद सा गूंजता है। यही तो कविता के टूल्स हैं जिन पर शहंशाह आलम की सिद्धहस्त पकड़ है। उनकी कविताओं का पैटर्न बरबस पाठकों को अपने जादू से चकित कर देता है। जैसे—'एक चिड़िया उड़ती है / और छू आती है इंद्रधनुष / यह रंग अद्भुत था / इस पूरे समय में / उस हत्यारे तक के लिए।'

एक अद्भुत राजनीतिक चेतना से लैस है कवि। इसमें बिहार प्रदेश के आमजन की सोच को भी समझने का प्रयास किया है और समसामयिक राजनीति पर बड़ा कटाक्ष भी है—'यह बड़ा भारी आयोजन था / उनके द्वारा भव्य और अंतर्राष्ट्रीय भी / इसलिए कि इस महाआयोजन में / जनतंत्र को हराया जाना था / भारी बहुमत से / मित्रों, निकलो अब इस घर से / अब यहां न जन है न जनतंत्र!'

तो शहंशाह आलम की कविता में एक तरफ कोमल शब्दावली है तो दूजी तरफ अनायास गूंजता सटायर है जो कवि को अपने समय का सजग कवि बनाने में सक्षम है।

इस समय की पटकथा : शब्दा प्रकाशन, 63 एमआईजी हनुमान नगर पटना बिहार

शब्द-विरोधी समय में हिन्दी जगत में कविताओं का टोटा नहीं है। बिना किसी औपचारिकता के कवि अपनी अभिव्यक्ति के बल पर पाठकों से सम्वाद करने की मुहिम छेड़े हैं। चूंकि लड़ाई एक-आयामी नहीं है, दुश्मन भी बहुरूपिये हैं तो फिर कविता ही ऐसा औज़ार बनती है जिससे कवि अपनी पीड़ा, विडम्बना और उत्पीड़न से लड़ना चाहता है। यही कारण है कि आज छपी कविता भी दीख जाती हैं और आभाषी संसार में भी कविता ही एक-दूसरे को जोड़े रक्खी है। इस कठिन समय में हिन्दी कविता आलोचकों की धता बताकर अपने लिए एक सहज फार्म भी खोज रही है।

इस सदी में यांत्रिकता और कृत्रिमता से जूझते आम आदमी के जीवन में विकल्पहीनता को चैलेंज करती कविताएं इस संग्रह को विशिष्ट बनाती हैं। सुशांत सुप्रिय की कविताएं हाशिए के लोगों के साथ मज़बूती से खड़ी होती हैं। शिल्प और संवेदना के स्तर पर कविताएं प्रभावी हैं।

इस रूट की सभी लाइनें व्यस्त हैं : सुशांत सुप्रिय : मूल्य 335.00

अंतिका प्रकाशन, सी-56//यूजीएफ 4, शालीमार गार्डन, गाजियाबाद, उप्र

संकेत

अंक 16 जनवरी2016

मार्गदर्शक :

उमाशंकर तिवारी

09453030825

संरक्षक :

दलजीत सिंह कालरा

09425219937

कला संपादक :

के. रवीन्द्र

09425522569

सम्पादक :

अनवर सुहैल

सम्पर्क : अनवर सुहैल,
टाईप 4/3, ऑफीसर्स कॉलोनी,
पो. बिजुरी जिला अनूपपुर मप्र 484440
मो. 09907978108, 07587690183
ईमेल : sanketpatrika@gmail.com
वेबसाईट : www.sanketpatrika.webnode.com

यह अंक : 25/-
विशेष सहयोग : 100/- (चार अंकों के लिए)
आजीवन सहयोग : 1000/-

सम्पादन, संचालन एवम् प्रबंध पूर्णतया अवैतनिक, अव्यवसायिक। पत्रिका में प्रकाशित विचारों के लिए लेखक स्वयं उत्तरदायी, सम्पादक की सहमति अनिवार्य नहीं।

प्रकाशन एवम् मुद्रण :
श्रीमती नाज़रा फैकर की ओर से श्री प्रकाश शर्मा द्वारा महामाया प्रिंटिंग प्रेस, बिजुरी जिला अनूपपुर मप्र से मुद्रित एवम् श्रीमती नाज़रा फैकर द्वारा टाईप 4/3, बिजुरी जिला अनूपपुर मप्र से प्रकाशित

हिमतरू पत्रिका का गणेश गनी अंक

कुल्लू हिमाचल प्रदेश से निकलने वाली पत्रिका 'हिमतरू' का अक्टूबर 2015 अंक ने कविता के प्रति अपनी ज़िम्मेदारी निभाते हुए गणेश गनी की सशक्त कविताओं पर केन्द्रित अंक निकाला है.

'घुट रही है हवा' कविता में पृथ्वी पर प्रेम बरसाने की लालसा उमड़ रही है-- एक पौधे ने कहा /आज ज्यादा पानी देना भाई/ मेरी गांठों से कोंपलें फूटने को हैं...

कितनी मासूम मदद की उम्मीद एक बेजुबान पौधे की है, क्योंकि ---'कल और फूल खिलेंगे/और प्रेम बरसेगा पृथ्वी पर' तो ये है कविता जिसमें कवि जानता है कि बिना शुरूआत किये कोई काम अंजाम तक नहीं पहुँचता. और जब हम दुनिया को स्वर्ग बनाने की बातें करते हैं, तब अपना थोड़ा सा योगदान/अंशदान नहीं करना चाहते. जो बिम्ब प्रतीक गायब हो रहे हैं, गणेश गनी की कविताओं में बरबस अनायास ही आते हैं और पाठक की चेतना को झकझोरते हैं. बाज़ार और वैश्वीकरण की आंधी में किसान और खेत किस तरह से विकासशील देशों के लिए शोषण का केंद्र बने हैं और विश्व-राजनीति किस तरह से इनकी अनदेखी कर रही है उसकी बानगी देखिये---'अब बैलों के गले लगकर/खींचना चाहता है हल/और खेत की हथेली पर/किसान की किस्मत की लकीरें' गणेश गनी की कविताओं में लोक से विमुखता के प्रति गहरी चिंताएं मुखर हैं. फासीवाद के बढ़ते प्रभाव से कवि सचेत है. शब्द और सृजक इंसानी समाज के लिए कितने जरूरी हैं इसे कवि से ज्यादा कौन समझ सकता है? ---'शब्द कहीं हथियार न बन जाएँ/ इसीलिए वे चाहते हैं/शब्दों को मार डालना /जुबान काट डालना /या कम से कम/ शब्दों के अर्थ ही बदलना' (धारा 144)

यही राजनितिक सजगता कविता को एक हथियार बनाती है जिससे कवि तो लड़ता ही है, विराट पाठक समाज भी इस हथियार से अपने आसपास के दुश्मनों को पहचानने लगता है, और यही कविता का उद्देश्य है और यही कवि की सचेत दृष्टि-सम्पन्नता.

'हिमतरू' का गणेश गनी पर कविता केन्द्रित अंक इसीलिए पठनीय है, संग्रहणीय है और सराहनीय है. गणेश गनी के रचना कर्म पर, संकलित कविताओं पर सत्यपाल सहगल, जयदेव विद्रोही, हंसराज भारती, उमाशंकर सिंह परमार, अजीत प्रियदर्शी, राहुल देव और अविनाश मिश्र के आलेख भी हैं जो गणेश गनी की कविताई के कई प्रश्नों को उजागर करते हैं.

एक उत्कृष्ट अंक के संपादन के लिए किशन श्रीमान बधाई के पात्र हैं.

हिमतरू : संपादक : किशन श्रीमान : (यह अंक रू 151 रुपये)

201, कटोच भवन, नज़दीक मुख्य डाकघर, ढालपुर, कुल्लू (हि.) 9736500069